Registration No. V-36244/2008-09 **ISSN :- 2350-0611**

The journal has been listed in 'UGC Approved List of Journals' with Journal No. – 48441 in previous list of UGC

JIFE Impact Factor – 7.23

Research Highlights

A Multidisciplinary Quarterly International Peer Reviewed Referred Research Journal

Editor
Dr. Kamlesh Kumar Singh
Assistant Professor
Department of Sociology
Pt. D.D.U. Govt. Girls P.G. College
Sevapuri, Varanasi

Volume - XIII **No. - 1** **(Jan. – Mar. 2026)**

(Part – IV)

Published by
Future Fact Society
Varanasi (U.P.) India

Research Highlights - *A Referred Journal, Published by : Quarterly*

Correspondence Address :
C 4/270, Chetganj
Varanasi, (U.P.)
Pin. - 221 010
Mobile No. :- 09336924396
Email- researchhighlights1@gmail.com

Note :-

The views expressed in the journal "Research Highlights" are not necessarily the views of editorial board or publisher. Neither any member of the editorial board nor publisher can in anyway be held responsible for the views and authenticity of the articles, reports or research findings. All disputes are subject to Varanasi (Uttar Pradesh) Jurisdiction only.

Managing Editor
Avinash Kumar Gupta

©Publisher

ISSN : 2350-0611

Printed by
Interface Computer, B 31/13-6, Malviya Kunj, Lanka, Varanasi-221005 (U.P.)

ADVISORY BOARD

- **Prof. T. N. Singh,** United Nations Professor of Plant Physiology, Department of Plant Sciences, University of Gondar, Ethiopia (Africa)
- **Prof. S.K. Bhatnagar,** School for Legal Studies, BBAU, Lucknow
- **Prof. (Dr.) Munna Singh**, Head of Department, Physical Education and Sports Sciences Department, Handia P.G. College, Handia, Prayagraj, U.P.
- **Dr Achchhe Lal Yadav**, Assistant Professor, Physical Education, Pt. D. D. U. Government Degree College, Saidpur, Ghazipur
- **Dr. Pramod Rao,** Assistant Professor, Department of Hindi, VBS Purvanchal University, Jaunpur
- **Dr. Anil Pratap Giri,** Assistant Professor, Department of Sanskrit, Pondicherry Central University, Pondicherry.

ଔ

EDITORIAL BOARD

- **Dr. Sanjay Singh,** Department of Plant Science, University of Gondar, Ethiopia (Africa)
- **Dr. Diwakar Pradhan,** Professor in Nepali, Head, Deptt. of Indian Languages Faculty of Arts, Banaras Hindu University, Varanasi
- **Dr. Shailendra Singh,** Professor and Head, Department of Sociology, J.S. University, Sikohabad, U.P.
- **Dr. Manish Arora,** Associate Professor, Faculty of Visual Arts, Banaras Hindu University, Varanasi
- **Dr. Surjoday Bhattacharya,** Assistant Professor, Government Degree College, Pratapgarh U P
- **Dr. Upasana Ray,** Associate Professor, National Council of Educational Research and Training, New Delhi
- **Dr. Krishna Kant Tripathi,** Assistant Professor, Deptt. of Education, Central University of Mijoram, Mijoram
- **Dr. Urjaswita Singh,** Assistant Professor, Department of Economics, M.G. Kashi Vidyapith, Varanasi.
- **Dr. Satyapal Yadav,** Assistant Professor, Department of History, Banaras Hindu University, Varanasi.
- **Dr. Brajesh Kumar Prasad,** Assistant Professor, Department of History, Banaras Hindu University, Varanasi.
- **Dr. Dewendra Pratap Tiwari,** Assistant Professor, Department of Political Science, Shree Lakshmi Kishori Mahavidyalaya (A Constituent Unit of BRA Bihar University, Muzaffarpur), Bihar

- **Dr. Hena Hussain,** Assistant Professor, Department of Psychology, Oriental College, Patna City (A Constituent Unit of Patliputra University, Patna), Bihar
- **Dr. Santosh Kumar Singh,** Assistant Professor, P.G. Department of Psychology, J.P. University. Chapra
- **Dr. Ramkirti Singh,** Assistant Professor, Department of Psychology, Gorakhpur University, Gorakhpur
- **Dr. Girish Kumar Tiwari,** Assistant Professor, National Council of Educational Research and Training, New Delhi
- **Dr. Vaibhav Kaithvas,** Assistant Professor, Department of Performing Art, Eklavya University, Sagar Road, Damoh, MP
- **Dr. Ranjeet Kumar Ranjan,** Assistant Professor, Department of Psychology, J.P. College, Narayanpur, Bihar
- **Dr. Paromita Chaubey,** Faculty of Education, Banaras Hindu University, Varanasi



EDITOR'S NOTE

It is a great honour to me to extend my warm greetings and welcome you all to the journal, **Research Highlights,** a refereed journal of multi disciplinary research. The journal, which is a peer-reviewed, will devote to the promotion of multi-disciplinary research and explorations to the South Asian and global community. It is our objective to provide a platform for the publication of new scholarly articles in the rapidly growing field of various disciplines. We are trying to encourage new research scholars and post graduate students by publishing their papers so that they may learn and participate in literary publishing through a professional internship. Scholarly and unpublished research articles, essays and interviews are invited from scholars, faculty researchers, writers, professors from all over the world.

Note: All outlook and perspectives articulated and revealed in our peer refereed journal are individual responsibility of the author concerned. Neither the editors nor publisher can be held responsible for them anyhow. Plagiarism will not be allowed at any level. All disputes are subject to Varanasi (Uttar Pradesh) Jurisdiction only.

Hoping all of you shall enjoy our endeavors and those of our contributors.

Editor



CONTENTS

"Research Highlights"

➲	नगरीय महिलाएँ और AI : अवसर बनाम खतरे का समाजशास्त्रीय विश्लेषण ***डॉ. राकेश कुमार***	01-04
➲	बिहार में सामाजिक परिवर्तन और गरीबी : एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण ***डॉ. संगीता कुमारी***	05-10
➲	'प्रभा खेतान' की आत्मकथा 'अन्या से अनन्या' में स्त्री अस्मिता की खोज ***पूजा***	11-15
➲	मृण्मूर्तिकला – विविध काल में प्रासंगिक ***सुनीत कुमार द्विवेदी*** ***प्रो. विमलेश कुमार पाण्डेय***	16-18
➲	डॉ. अंबेडकर और नारी सशक्तिकरण : एक अनुशीलन ***अलका कुमारी*** ***डॉ. संजीव कुमार सुधांशु***	19-24
➲	गैर दलित लेखकों का दलित साहित्य में योगदान ***अमित कुमार***	25-29
➲	महिला सशक्तिकरणः चेतना का नया आयाम ***डॉ. सै. मसरूर अब्बास ज़ैदी***	30-31
➲	दलित साहित्य की आत्माभिव्यक्ति : जूठन ***बैजू कुमार राम*** ***डॉ. रामदुलार साहनी***	32-35
➲	प्रसिद्ध हिन्दीतर महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में सामाजिक चिंतन का विश्लेषणात्मक अध्ययन ***डॉ. रक्षा सिंह***	36-38
➲	अरविन्द घोष के राजनैतिक विचार : राजनीति में सांस्कृतिक हस्तक्षेप ***दिलीप कुमार मिश्रा***	39-44
➲	बिहार की राजनीति में सामाजिक न्याय का विमर्श ***Dr. Rajeev Kumar Ranjan***	45-49
➲	1857 की क्रांति में महिलाओं का योगदानः शौर्य और बलिदान की गौरवगाथा ***रूबी यादव***	50-54
➲	मुगल काल में स्थापत्य कला का विकास ***सौम्या सिंह***	55-57
➲	हिन्दी साहित्यकारों के यात्रा–साहित्य का मूल्यांकन (विशेष संदर्भ : रूसी यात्रा) ***मुकेश कुमार***	58-61
➲	निराला की प्रगतिवादी कविताओं में यथार्थबोध ***डॉ. आनंद कुमार गोंड***	62-66

नगरीय महिलाएँ और AI : अवसर बनाम खतरे का समाजशास्त्रीय विश्लेषण

डॉ. राकेश कुमार*

शोध सार -

कृत्रिम बुद्धिमत्ता यानी AI ने 21वीं सदी के शहरी समाज की संरचना को मूल रूप से बदल दिया है। नगरीय महिलाएँ इस बदलाव के केंद्र में हैं। महिलाएँ सभी कार्यों में AI की मदद लेना शुरू कर दिए हैं। AI के माध्यम से अपने समय और पैसे दोनों की बचत करने में सफल हो रहे हैं। नगरीय महिलाएँ बहुत हद तक इससे अवगत हो गई हैं। ऑनलाइन शॉपिंग, ऑनलाइन ट्रांसफर मनी, ऑनलाइन स्टडी, ऑनलाइन ही ग्रॉसरी का सामान खरीदना, जिस कार्य से संबंधित जानकारी लेनी हो उससे संबंधित ऐप डाउनलोड कर उससे सीखना आदि कार्य अब महिलाएँ घर बैठे आसानी से कर पाती हैं। पहले इस पर अधिकार पुरुष वर्ग और युवा वर्ग के विद्यार्थियों तक ही था, पर नगरीय महिलाएँ इनसे सहायता लेकर बहुत कुछ सीख ली हैं। महिलाओं को सृजनात्मक कार्यों में अधिक रुचि देखी गई है, किंतु AI के प्रयोग से उनके अंदर की क्रिएटिविटी कहीं खोती जा रही है और वे उन पर आश्रित होते जा रहे हैं। AI ने कार्य को जहाँ आसान बनाया है वहीं इसने महिलाओं के जीवन में कई मुश्किलें भी बढ़ा दी हैं।

प्रस्तुत आलेख डिजिटल युग में नगरीय महिलाओं पर AI के प्रभाव का समाजशास्त्रीय विश्लेषण करता है। अध्ययन यह दर्शाता है कि AI जहाँ आर्थिक और शैक्षणिक सशक्तिकरण के नए अवसर दे रहा है, वहीं डिजिटल विभाजन, लैंगिक पूर्वाग्रह और रोजगार-संकट जैसे खतरे भी उत्पन्न कर रहा है। इससे जुड़े क्रमशः दो प्रमुख उद्देश्यों एवं परिकल्पनाओं को भी अध्ययन में शामिल किया गया

मुख्य शब्दः महिला सशक्तिकरण, डिजिटल विभाजन, सृजनात्मकता, लैंगिक पूर्वाग्रह

भूमिक - तकनीक समाज को बदलती है और समाज तकनीक को आकार देता है।" (Manuel Castells, The Rise of the Network Society, 2010, P. 05)

21 वीं सदी का भारत "डिजिटल इंडिया" के नारे के साथ AI क्रांति के मुहाने पर खड़ा है। हम जिस दौर में जी रहे हैं उसे इतिहासकार ने "चौथी औद्योगिक क्रांति" का नाम दिया है। AI अर्थात् आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस जिसको हम हिंदी में "कृत्रिम बुद्धिमत्ता" से जानते हैं। हम कृत्रिम का अर्थ उस वस्तु से समझते हैं जिसे मानव द्वारा निर्मित किया गया होता है। यह AI अर्थात् कृत्रिम बुद्धिमत्ता मानव द्वारा निर्मित एक डिजिटल उपकरण है जो आधुनिक समाज को एक नई ऊँचाई और विकास का मार्ग प्रशस्त करता है। AI की विशिष्टता सर्वप्रथम पुरुषों को और फिर युवा वर्ग के विद्यार्थियों ने समझा, अब नगरीय महिलाएँ भी इसे भली-भाँति समझ रही हैं। इसके प्रयोग से महिलाओं का आत्मविश्वास भी बढ़ा है। इसके माध्यम से नगरीय महिलाएँ नये-नये तकनीक, भाषा, रोबोटिक्स तथा चिकित्सा से संबंधित ज्ञान को बढ़ा रही हैं। वर्तमान तकनीक और प्रौद्योगिकी युग में AI को 'इंटेलिजेंट एजेंट' का नाम दिया गया है। जॉन मैकार्थी द्वारा इस आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस का आविष्कार किया गया जो मनुष्य के जैसा ही सोच सके और कार्य कर सके। किंतु इसमें भावनात्मक रूप से व्यक्ति से जुड़ पाना संभव नहीं है। यही कारण है कि AI से हम बस वही ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं जिसके लिए व्यक्ति स्वयं के दिमाग का प्रयोग करता है। AI किसी व्यक्ति का स्थान नहीं ले सकता। नगरीय महिलाएँ जहाँ इसके प्रयोग से स्वयं को सशक्त बना रही थीं वहीं AI में भावनात्मक जुड़ाव नहीं होने के कारण उसने किसी की तस्वीर, आवाज का गलत प्रयोग कर उनके जीवन को अंधकार में डाल दिया है जिससे महिलाएँ कई प्रकार से शोषण का शिकार हो रही हैं। अश्लील

* समाजशास्त्र विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

टिप्पणियाँ, फेक प्रोफाइल, साइबर स्टॉकिंग आदि कई ऐसी समस्याओं से नगरीय महिलाएँ आम तौर से जूझ रही हैं। इस प्रकार की डिजिटल हिंसा महिलाओं की स्वतंत्रता, सम्मान और मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित कर रही है। (भारद्वाज, डिजिटल समाज और महिला सुरक्षा, 2022, P. 54)

अब महिलाएँ इस डिजिटल युग में AI के माध्यमों से अपनी पहचान बना रही हैं तथा सामाजिक मुद्दों पर खुलकर अपने विचार भी प्रकट कर रही हैं। इससे महिलाओं को सामाजिक और आर्थिक रूप से सशक्त बनने का अवसर प्राप्त हुआ है। (Sen, Development as Freedom, 1999, P. 87)

अवसर के अनेक स्वरुप

1. आर्थिक स्वायत्तता का विस्तार :

श्रम बाजार का लोकतंत्रीकरण – पहले किसी भी कार्य के लिए डिग्री, अंग्रेजी भाषा, नगर आदि की जरूरत होती थी, किंतु AI के माध्यम से ग्लोबल नौकरी पाने की सुविधा घर से ही प्राप्त हो रही है। फ्रीलांसिंग (स्वयं मालिक-स्वयं कार्यकर्ता) जॉब में चैट जी पी टी के माध्यम से विदेशी ग्राहकों के लिए ईमेल लिखना, ग्रामरली के माध्यम से अंग्रेजी में सुधार करना, कैनवा टूल्स से किसी के फोटो को डिजाइन करना, एनिमेट करना, फोटो को साफ-सुथरा करना, शानदार वीडियो बनाना आदि एक अनोखा अवसर प्रदान कर रहा है जीविकोपार्जन के लिए। नगरीय महिलाएँ भी इस अवसर से लाभान्वित हो रही हैं और अपना जीविकोपार्जन कर रही हैं। (बिहार के दरभंगा की 12वीं पास लड़की अब Upwork से $400 रू / महीने कमाती है, रीना पटेल, वर्किंग द नाइट शिफ्ट, 2010, P. 47)

सूक्ष्म उद्यमिता को बढ़ावा - किसी भी व्यापार की शुरुआत करने के लिए पूँजी, दुकान, स्टाफ, स्थान की जरूरत होती थी किंतु AI के माध्यम से 'Zero Investment Business' संभव हो रहा है। उदाहरण के लिए मीशो रिसैलिंग में AI के माध्यम से प्रोडक्ट फोटो का बैकग्राउंड हटाकर, ChatGPT से आकर्षक विवरण बनाकर उसे व्हाट्सएप पर बेचने का कार्य किया जा रहा है। AI के टूल्स Canva, Chatgpt, Shopify द्वारा बिना किसी टेक्निकल बैकग्राउंड के महिलाएँ ऑनलाइन बुटीक, कोचिंग, कंटेंट बिजनेस आदि कर रही हैं।

वित्तीय समावेशन - AI-बेस्ड क्रेडिट स्कोरिंग से उन महिलाओं को भी लोन मिलना आसान हो गया है जिनके पास गिरवी रखने के लिए कुछ नहीं होता अर्थात् बिना कागज के ही फोन पे / गूगल पे सही डाटा उनका कोलेटरल बन जाता है और 50,000/- रुपये तक लोन मिलना संभव हो गया है। (RBI रिपोर्ट ऑन करेंसी एंड फाइनेंस, 2024, P. 112)। जीविका दीदी जो बिहार की 1.3 करोड़ महिलाएँ SHG से जुड़ी हैं, अब उन्हें AI के माध्यम से पता चलता है कि किस प्रोडक्ट का डिमांड ज्यादा और किसका कम है।

गिग इकोनॉमी - ये AI का एक ऐसा टूल्स है जिसके माध्यम से तुरंत कार्य के पैसे प्राप्त किए जाते हैं जिसमें Ola-Uber, Zomato-Swiggy डिलीवरी वर्कर, अर्बन कंपनियाँ आदि प्लेटफार्म द्वारा AI मैचिंग से महिलाओं को फ्लेक्सिबल काम मिल रहा है। इसमें AI तय करता है किसकी बुकिंग का कितना रेट है उसे स्वीकार करें या न करें। अक्सर ज्यादा रेट वाला बुकिंग लेकर कम पैसे वाले कार्य नहीं करने को अलर्ट करता है। निगरानी पूँजीवाद श्रमिक का केवल शोषण करता है। (शौशना जुबॉफ, द एज ऑफ सर्विलांस कैपिटलिज्म, 2019, P. 95)

2. शैक्षणिक कौशल और गतिशीलता - AI के Tutor Apps द्वारा पर्सनल ट्यूटर प्रदान किये जाते हैं। अक्सर महिलाओं की शादी के बाद पढ़ाई बंद हो जाती थी किंतु अब AI के विभिन्न ऐप जैसे यूट्यूब, डुलिंगो, खान एकेडमी पर नगरीय महिलाएँ AI बेस्ड पर्सनलाइज्ड लर्निंग से अपनी गति से कोडिंग, मार्केटिंग डिजाइन, भाषा पर अपनी पकड़ बनाना खासकर अंग्रेजी भाषा बोलना और पढ़ना सीख रही हैं। डुलिंगो AI सादा मुफ्त पढ़ाई की सेवा देता है जिसमें ट्यूटर से कितने भी प्रश्न पूछें वे डांटते नहीं और इसमें नगरीय महिलाएँ खाना बनाने के बाद भी रात के ग्यारह बजे भी पढ़ सकती हैं। चैटजीपीटी के द्वारा दसवीं के साइंस के पढ़ाई को भी आसानी से भाषा में समझाया जाता है जिससे कामकाजी माताओं का तनाव कम हुआ है। इसमें किसी भी भाषावादी होने से नगरीय महिलाओं को

कोई परेशानी नहीं होती है। केन्वा AI, मीशो रिसैलिंग, चैटजीपीटी, ग्रामरली डिजिटल मार्केटिंग इन सबके द्वारा नगरीय महिलाएँ मैट्रिक पास भी और ग्रेजुएट भी सभी जीविकोपार्जन कर रही हैं। (SHG जीविका दीदी इसी का जीवंत उदाहरण है)। AI से Skill सीखने का काम अब महिलाएँ घर बैठे पढ़ाई कर रही हैं। (Coursera पेपर 62% भारतीय महिलाएँ हैं, अजय अग्रवाल, जोशुआ गांस, प्रेडिक्शन मशीन्सः द सिंपल इकोनॉमिक्स ऑफ आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, 2017, P. 287)

3. सार्वजनिक जीवन में भागीदारी - सुरक्षा : महानगरों जैसे दिल्ली, मुंबई आदि शहरों में AI इनेबल सीसीटीवी से हॉटस्पॉट आइडेंटिफाई किए जाते हैं। सेफ्टीपिन ऐप क्राउड सोर्स डाटा कलेक्ट करता है अर्थात् जनता से ही ये ऐप सारी जानकारियाँ प्राप्त कर सेफ्टी स्कोर बताती है जिससे कहाँ पर महिलाएँ असुरक्षित हो सकती हैं इसकी प्रेडिक्टिव पुलिसिंग से सार्वजनिक स्थानों पर महिलाओं की सुरक्षा बढ़ी है। (शौशना जुबॉफ, द एज ऑफ सर्विलांस कैपिटलिज्म, 2019, P. 312)

4. घरेलू श्रम का पुनर्गठन - महिलाएँ घर का काम करते-करते थक जाती हैं, अब इसके साथ-साथ वे ऑफिस भी जाती हैं। ऐसी परिस्थिति में घर का जो जरूरत का सामान होता है उसे खरीदने के लिए बाहर जाने का समय नहीं मिल पाता। यहाँ AI के बेहतरीन रूप बिग बास्केट, ब्लिंकिट, मिंत्रा, अमेजन, फ्लिपकार्ट आदि नगरीय महिलाओं के लिए ही उपयोगी सिद्ध हुआ है। घर के सारे कामों की जिम्मेदारी महिलाओं की होती है। ऑफिस आकर बच्चों को होमवर्क कराने के लिए खान मिशन AI उपलब्ध है। बच्चे को घर पर छोड़कर जॉब पर जाने में डर होती थी किंतु सीसीटीवी, स्मार्ट लॉक के द्वारा अब वे आशापूर्ण होकर ऑफिस जा सकती हैं। AI के उपकरणों का घर में प्रयोग करने से नगरीय महिला का 3-4 घंटे रोज बच रहा है। इसी वजह से नगरों में कामकाजी महिलाओं की संख्या में 17% वृद्धि हुई है। (IMF, Nazeer, Kalpana Kochhar, AI and the Future of Women's Work, 2023, P. 15)

खतरे का स्वरुप

1. डिजिटल विभाजन का नया रूप - आज का युग डिजिटल युग है। समाज में जिन महिलाओं के पास Internet, Phone, Computer, AI है, जिन नगरीय महिलाओं को तकनीकी ज्ञान है वे आज आगे बढ़ जाएँगी और जिनको इसका ज्ञान नहीं है ये आज के इस डिजिटल युग में पिछड़ जाएँगी। नया खतरा "AI Divide" के रूप में बढ़ रही है। NSSO 2023 के अनुसार नगरीय महिलाओं में केवल 31.0% महिलाएँ ही AI टूल्स से परिचित हैं। इससे नए-नए स्किल रहेंगे तो जॉब रह पाएँगी नहीं तो नगरीय महिलाएँ बेरोजगार हो जाएँगी। डीपफेक ब्लैकमेल से नगरीय महिलाओं को जिन्हें इसकी जानकारी न हो उसे ब्लैकमेल किया जा सकता है ऐसे में नगरीय महिलाएँ डिप्रेशन का शिकार हो सकती हैं। इससे नगरीय महिलाओं को आर्थिक, सामाजिक, सुरक्षा तीनों प्रकार का खतरा हो सकता है। (भारद्वाज, डिजिटल समाज और महिला सुरक्षा, 2022, P. 54)

2. रोजगार पर संकट - AI के BPO, Data entry, customer support जैसे क्षेत्रों में जहाँ महिलाओं की भागीदारी ज्यादा थी, वहाँ AI के माध्यम से जॉब्स स्वचालित कर रहे हैं।

3. जेंडर बायस का पुनरुत्पादन - महिलाओं और पुरुषों में लैंगिक पूर्वाग्रह बढ़ता ही जा रहा है। समाज के साथ-साथ अब AI भी असमानता उत्पन्न कर रहा है। AI भी समझ जाता है कि ये पितृसत्तात्मक समाज महिलाओं के प्रति बायस है। इसलिए यह भी महिलाओं को पुरुषों की अपेक्षा कम महत्व देते हैं। एक ही कार्य के लिए बराबर डिग्री होने पर भी पुरुषों का सिलेक्शन और महिलाओं का नहीं होता है। (हायरिंग AI में पुरुषों को प्राथमिकता मिलना, क्रेडिट स्कोरिंग में भेदभाव ये समाज के पुराने रूढ़ियों को ही बढ़ाते हैं)। पूर्वाग्रह वह चश्मा है जिससे दुनिया गलत दिखती है। (सिमोन द बोउवार, The Second Sex, 1949, P. 16)

4. निजता और सुरक्षा का हनन - डीपफेक,AI-बेस्ड स्टॉकिंग, ऑनलाइन हरासमेंट के नए तरीके सामने आए हैं। AI से नकली अश्लील फोटो, वीडियो से महिलाओं की नौकरी चली जाती है, शादी टूट जाती है। उन्हें ऑनलाइन

हरासमेंट ऐसे करते हैं कि वे आत्महत्या तक करने को मजबूर हो जाते हैं। डिजिटल फुटप्रिंट से महिलाओं की असुरक्षा बढ़ी है।

5. श्रम बाजार का स्त्रीकरण और विखंडन - Automation का खतरा : BPO, टेली-कॉलिंग, डाटा एंट्री इन क्षेत्रों में 60% से अधिक महिलाएँ हैं। McKinsey की रिपोर्ट कहती है कि 2030 तक भारत में 12 मिलियन महिला जॉब्स AI से प्रभावित होंगी।

गिग वर्क की अनिश्चितता - AI एल्गोरिदम रेटिंग गिरते ही काम मिलना बंद हो जाएगा। मैटरनिटी लीव, PF जैसी सुरक्षा नहीं मिलती।

6. मानसिक स्वास्थ्य और परफेक्ट वूमेन का दबाव-इंस्टाग्राम के AI फिल्टर्स, प्रॉडक्टिविटी AI ऐप्स ये सब मिलकर "सुपर वूमेन" का दबाव बनाते हैं। घर, बच्चे, करियर, फिटनेस सब में परफेक्ट ही महिलाओं को देखना चाहता है। नगरीय महिलाओं में चिंता बढ़ने का कारण "डिजिटल कंपेरिजन" बताया गया है। जब महिलाएँ घर से बाहर निकली तो समाज ने "परफेक्ट दिखो" का नया पिंजरा बना दिया। (नाओमी वुल्फ, द ब्यूटी मिथ, 1990, P. 10)

साइबर खतरे से बचने के सुझाव

1. साइबर अपराध पर सख्ती से रोक लगाई जाए।
2. सभी विद्यालयों और कॉलेज में इसकी जानकारी प्रदान की जाए।
3. समाज लैंगिक पूर्वाग्रह को खत्म किया जाए।
4. महिलाओं को डिजिटल साक्षरता और साइबर सुरक्षा के प्रति जागरूक किया जाए।

निष्कर्ष - "भविष्य पहले ही आ चुका है : बस समान रूप से वितरित नहीं है।" — विलियम गिब्सन

AI स्वयं में न अच्छा है न बुरा। यह एक उपकरण है जिसका प्रयोग अपनी सोच के अनुसार व्यक्ति करता है। नगरीय महिलाओं के लिए यह अवसर बनेगा या खतरा, यह इस पर निर्भर करता है कि नीतियाँ, शिक्षा और सामाजिक चेतना इसे कैसे आकार देती हैं। यह नगरीय महिला को "डिजिटल लक्ष्मी" भी बना सकता है और "डिजिटल दासी" भी। फर्क बस इस बात से पड़ेगा कि समाज इसे कैसे नियंत्रित, शिक्षित और डेमोक्रेटिक करती है।

समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से यह स्पष्ट होता है कि डिजिटल AI समाज में व्याप्त विचारधारा पर कार्य करता है। इससे महिलाएँ बहुत कुछ सीखकर स्वयं को आर्थिक, शैक्षणिक और सामाजिक रूप से सशक्त कर पाई हैं। किंतु हमारी परिकल्पनाएँ भी प्रस्तुत लेख में सत्य पाई गई हैं कि लैंगिक असमानता और पितृसत्तात्मक सोच से नगरीय महिलाओं के लिए डिजिटल युग में असमानताएँ उत्पन्न कर रहा है।

अतः यह कहा जा सकता है कि AI नगरीय महिलाओं के लिए अवसर और खतरा दोनों ही साबित हो सकता है। इसके लिए नगरीय महिलाओं को डिजिटल जागरूकता और साक्षरता की आवश्यकता है। समाज का भी यह कर्तव्य है कि वे भी महिलाओं के प्रति सजग हों।

संदर्भ सूची

- Castells, M. (2010), The Rise of the network society, Wiley-Blackwell, P. 05, 78.
- West, C., & Zimmerman, D. (1987). Doing gender. Gender and Society, Society, 1(2), 125-151.
- National Crime Records Bureau (2024), Crime in India Report, Government of India, P. 214
- Sen, A. (1999). Development as Freedom. Oxford University Press, P. 87.
- Wolf Naomi (1990), The Beauty Myth, P. 10
- भारद्वाज, ममता (2022), डिजिटल समाज और महिला सुरक्षा, नई दिल्ली: रावत पब्लिकेशन, पृ. 54
- पटेल, रीना (2010), वर्किंग द नाइट शिफ्ट, पृ. 47
- अग्रवाल, अजय (2017), इकोनॉमी ऑफ आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, पृ. 287
- गुरुमूर्ति, अमिता (2022), आईटी फॉर चेंज रिपोर्ट, पृ. 8

बिहार में सामाजिक परिवर्तन और गरीबी : एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण

डॉ. संगीता कुमारी*

सारांश -

प्रस्तुत शोध पत्र "बिहार में सामाजिक परिवर्तन और गरीबी : एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण"है I बिहार भारत के उन राज्यों में शामिल है जहाँ गरीबी, बेरोजगारी, अशिक्षा तथा सामाजिक असमानता की समस्या ऐतिहासिक रूप से गहराई से विद्यमान रही है। प्रस्तुत शोध लेख में बिहार में गरीबी की सामाजिक संरचना, उसके कारणों तथा सामाजिक परिवर्तन पर उसके प्रभाव का समाजशास्त्रीय विश्लेषण किया गया है। अध्ययन में यह स्पष्ट किया गया है कि बिहार में गरीबी केवल आर्थिक अभाव नहीं, बल्कि जातिगत असमानता, भूमिहीनता, बेरोजगारी, शिक्षा एवं स्वास्थ्य सेवाओं की कमी तथा सामाजिक बहिष्करण से जुड़ी बहुआयामी समस्या है। लेख में कार्ल मार्क्स, मैक्स वेबर, एमिल दुर्खीम तथा अमर्त्य सेन जैसे समाजशास्त्रियों एवं विचारकों के सिद्धांतों के आधार पर बिहार की सामाजिक-आर्थिक संरचना का विश्लेषण किया गया है। इसके साथ ही मनरेगा, जीविका योजना, सार्वजनिक वितरण प्रणाली तथा महिला स्वयं सहायता समूहों जैसी योजनाओं के प्रभाव का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। शोध में यह पाया गया कि इन योजनाओं ने ग्रामीण समाज में महिला सशक्तिकरण, वित्तीय समावेशन, स्वास्थ्य जागरूकता तथा सामुदायिक सहभागिता को बढ़ावा दिया है। अध्ययन में वर्तमान आँकड़ों एवं सरकारी रिपोर्टों के आधार पर बिहार और भारत की गरीबी की तुलनात्मक स्थिति को तालिकाओं एवं मानचित्रों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। शोध यह निष्कर्ष देता है कि बिहार में स्थायी सामाजिक परिवर्तन के लिए केवल आर्थिक विकास पर्याप्त नहीं है, बल्कि सामाजिक न्याय, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाओं का विस्तार, रोजगार सृजन तथा सामाजिक समानता सुनिश्चित करना आवश्यक है।

मुख्य शब्द (Keywords): गरीबी, सामाजिक परिवर्तन, महिला सशक्तिकरण, जीविका योजना, मनरेगा, सामाजिक असमानता, ग्रामीण विकास, सामाजिक बहिष्करण

प्रस्तावना

गरीबी केवल आर्थिक अभाव की स्थिति नहीं है, बल्कि यह सामाजिक बहिष्करण, संसाधनों की असमान उपलब्धता, अशिक्षा, बेरोजगारी तथा सामाजिक अवसरों से वंचित होने की व्यापक प्रक्रिया है। समाजशास्त्रीय दृष्टि से गरीबी समाज की संरचनात्मक असमानताओं का परिणाम मानी जाती है। भारत में बिहार लंबे समय से गरीबी, बेरोजगारी, अशिक्षा और सामाजिक पिछड़ेपन की समस्या से जूझता रहा है। ऐतिहासिक रूप से सामंती कृषि व्यवस्था, जातिगत विभाजन, सीमित औद्योगिक विकास तथा कमजोर आधारभूत संरचना ने बिहार की गरीबी को गहरा किया है (नीति आयोग, 2024, पृ. 12)।

स्वतंत्रता के बाद केंद्र और राज्य सरकारों ने गरीबी उन्मूलन के लिए अनेक योजनाएँ लागू कीं, किंतु बिहार में इन योजनाओं का प्रभाव लंबे समय तक सीमित रहा। हाल के वर्षों में जीविका योजना, मनरेगा, सार्वजनिक वितरण प्रणाली, प्रधानमंत्री आवास योजना तथा कौशल विकास कार्यक्रमों ने ग्रामीण जीवन में कुछ सकारात्मक परिवर्तन उत्पन्न किए हैं (विश्व बैंक रिपोर्ट, 2023, पृ. 18)। इसके बावजूद बिहार आज भी भारत के सबसे गरीब राज्यों में शामिल है।

समाजशास्त्री कार्ल मार्क्स के अनुसार आर्थिक असमानता वर्ग संघर्ष को जन्म देती है (मार्क्स, 1867, पृ. 44)। बिहार में भूमिहीन मजदूरों, दलितों और पिछड़े वर्गों की गरीबी इसी संरचनात्मक असमानता से जुड़ी हुई है। वहीं मैक्स वेबर ने सामाजिक प्रतिष्ठा, शक्ति और अवसरों की असमानता को गरीबी का महत्वपूर्ण कारण माना (वेबर, 1922, पृ. 63)। बिहार में जाति व्यवस्था और संसाधनों का असमान वितरण आज भी सामाजिक गतिशीलता को प्रभावित करता है।

बिहार में गरीबी की वर्तमान स्थिति

नीति आयोग के बहुआयामी गरीबी सूचकांक (MPI) 2024 के अनुसार बिहार आज भी भारत का सबसे अधिक गरीब राज्य माना जाता है। राज्य की बड़ी आबादी अभी भी शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण, आवास तथा रोजगार जैसी मूलभूत सुविधाओं से पूर्ण रूप से वंचित है। ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी का स्तर शहरी क्षेत्रों की तुलना में अधिक गंभीर है, क्योंकि अधिकांश ग्रामीण परिवार कृषि मजदूरी

* मगध विश्व विद्यालय बोधगया, बिहार

और असंगठित कार्यों पर निर्भर हैं। विशेष रूप से सीमांचल, मिथिलांचल और दक्षिण बिहार के कई जिलों में गरीबी, बेरोजगारी तथा सामाजिक पिछड़ापन अधिक दिखाई देता है (नीति आयोग, 2024, पृ. 21)।

सारणी सं- 1 : बिहार और भारत में गरीबी की तुलना (2024)

संकेतक	बिहार	भारत
बहुआयामी गरीबी (%)	33.7	14.9
ग्रामीण गरीबी (%)	39.5	19.3
शहरी गरीबी (%)	18.2	8.5
बेरोजगारी दर (%)	10.2	7.1
प्रति व्यक्ति आय (₹ वार्षिक)	60,000	1,97,000

स्रोत: नीति आयोग एवं राष्ट्रीय सांख्यिकी कार्यालय, 2024

उपरोक्त आँकड़े स्पष्ट करते हैं कि बिहार की आर्थिक स्थिति राष्ट्रीय औसत से काफी कमजोर है। प्रति व्यक्ति आय कम होने के कारण लोगों की क्रय शक्ति सीमित रहती है तथा जीवन स्तर निम्न बना रहता है। समाजशास्त्रीय दृष्टि से यह आर्थिक विषमता सामाजिक अवसरों की असमानता को भी बढ़ाती है। गरीब परिवारों के बच्चे गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, स्वास्थ्य सुविधाओं तथा रोजगार के अवसरों से वंचित रह जाते हैं, जिससे गरीबी पीढ़ी दर पीढ़ी बनी रहती है।

बिहार में गरीबी की समस्या केवल आर्थिक नहीं, बल्कि सामाजिक संरचना से भी जुड़ी हुई है। जातिगत असमानता, भूमिहीनता, कमजोर औद्योगिक विकास तथा प्राकृतिक आपदाएँ गरीबी को और अधिक जटिल बनाती हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में बाढ़ और सूखे की समस्या कृषि उत्पादन को प्रभावित करती है, जिसके कारण किसानों और मजदूरों की आय अस्थिर रहती है।

बिहार में गरीबी के सामाजिक कारण

बिहार का ग्रामीण समाज लंबे समय से जातिगत विभाजन और सामाजिक असमानता से प्रभावित रहा है। दलित, महादलित तथा अत्यंत पिछड़े वर्ग ऐतिहासिक रूप से भूमि, शिक्षा और आर्थिक संसाधनों से वंचित रहे हैं (घुर्ये, 1969, पृ. 88)। सामाजिक बहिष्करण के कारण इन समुदायों को रोजगार, शिक्षा और सामाजिक सम्मान के समान अवसर प्राप्त नहीं हो सके। यही कारण है कि गरीबी इन वर्गों में अधिक गहराई से दिखाई देती है।

दुर्खीम के अनुसार समाज में असमान सामाजिक संरचना सामाजिक विघटन को जन्म देती है (दुर्खीम, 1912, पृ. 51)। बिहार में जातिगत असमानता के कारण शिक्षा, स्वास्थ्य और रोजगार के अवसर समान रूप से उपलब्ध नहीं हो सके। आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में सामाजिक प्रतिष्ठा और संसाधनों का वितरण काफी हद तक जातिगत आधार पर प्रभावित होता है। समाजशास्त्रीय दृष्टि से यह सामाजिक बहिष्करण गरीबी के स्थायीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

भूमिहीनता बिहार की गरीबी का एक प्रमुख कारण है। राज्य की लगभग 70% आबादी कृषि पर निर्भर है, किंतु अधिकांश किसानों के पास बहुत कम भूमि है। बड़ी संख्या में ग्रामीण परिवार कृषि मजदूरी पर निर्भर रहते हैं, जिससे उनकी आय अस्थिर बनी रहती है (कृषि जनगणना, 2023, पृ भूमिहीनता के कारण ग्रामीण गरीब मजदूरी और प्रवास पर निर्भर रहते हैं। मानसून आधारित कृषि तथा बाढ़-सूखा जैसी समस्याएँ गरीबी को और बढ़ाती हैं। कृषि उत्पादन में अस्थिरता के कारण किसानों की आय प्रभावित होती है, जिससे ग्रामीण अर्थव्यवस्था कमजोर बनी रहती है।

बिहार में प्रवास और गरीबी

बिहार लंबे समय से श्रम प्रवास का प्रमुख राज्य रहा है। रोजगार के सीमित अवसरों के कारण लाखों मजदूर दिल्ली, पंजाब, महाराष्ट्र, गुजरात और अन्य राज्यों में काम करने जाते हैं (जनगणना विश्लेषण रिपोर्ट, 2023, पृ. 27)। प्रवास बिहार की ग्रामीण अर्थव्यवस्था का महत्वपूर्ण हिस्सा बन चुका है, क्योंकि प्रवासी मजदूरों द्वारा भेजी गई धनराशि से लाखों परिवारों का जीवन चलता है।

समाजशास्त्री एम.एन. श्रीनिवास के अनुसार प्रवास सामाजिक गतिशीलता को बढ़ाता है, किंतु पारिवारिक संरचना को भी प्रभावित करता है (श्रीनिवास, 1966, पृ. 92)। बिहार में बड़े पैमाने पर पुरुष प्रवास के कारण महिलाओं पर पारिवारिक और आर्थिक जिम्मेदारियाँ बढ़ी हैं। कई परिवारों में बच्चों की शिक्षा और बुजुर्गों की देखभाल का भार महिलाओं पर आ जाता है।

प्रवास का एक सकारात्मक पक्ष यह भी है कि इससे ग्रामीण परिवारों की आय में वृद्धि होती है और आधुनिक जीवन शैली का प्रभाव ग्रामीण समाज तक पहुँचता है। किंतु असंगठित क्षेत्र में कार्यरत मजदूरों को सामाजिक सुरक्षा, स्वास्थ्य सुविधा तथा स्थायी रोजगार नहीं मिल पाता, जिससे उनका जीवन असुरक्षित बना रहता है।

महिला सशक्तिकरण और गरीबी उन्मूलन

गरीबी का सबसे अधिक प्रभाव महिलाओं पर पड़ता है। बिहार में लंबे समय तक महिला साक्षरता, स्वास्थ्य और रोजगार के अवसर सीमित रहे। ग्रामीण महिलाओं की आर्थिक निर्भरता और सामाजिक प्रतिबंधों ने उनकी स्थिति को कमजोर बनाए रखा। हालाँकि जीविका योजना और स्वयं सहायता समूहों (SHG) ने इस दिशा में महत्वपूर्ण परिवर्तन किया है (विश्व बैंक, 2023, पृ. 19)।

नारीवादी समाजशास्त्रियों के अनुसार आर्थिक आत्मनिर्भरता महिलाओं की सामाजिक स्थिति को मजबूत करती है (पालायी एवं कुमार, 2018, पृ. 24)। SHG बैठकों ने महिलाओं को सामुदायिक नेतृत्व और वित्तीय निर्णयों में भागीदारी का अवसर दिया। अब महिलाएँ केवल घरेलू कार्यों तक सीमित नहीं हैं, बल्कि बैंकिंग, बचत, छोटे व्यवसाय तथा सामाजिक अभियानों में भी सक्रिय भागीदारी निभा रही हैं।

महिला सशक्तिकरण का प्रभाव बच्चों की शिक्षा, स्वास्थ्य और पोषण पर भी सकारात्मक रूप से पड़ा है। आर्थिक रूप से सशक्त महिलाएँ परिवार के निर्णयों में अधिक भूमिका निभाने लगी हैं, जिससे ग्रामीण समाज में लैंगिक संबंधों में धीरे-धीरे परिवर्तन दिखाई दे रहा है।

स्वास्थ्य, शिक्षा और सामाजिक विकास

गरीबी का सीधा प्रभाव स्वास्थ्य और शिक्षा पर पड़ता है। बिहार में कुपोषण, अशिक्षा और कमजोर स्वास्थ्य सेवाएँ लंबे समय तक गंभीर समस्या रही हैं। हाल के वर्षों में सरकारी योजनाओं और सामाजिक जागरूकता अभियानों के कारण कुछ सुधार देखने को मिला है।

अमर्त्य सेन के अनुसार गरीबी केवल आय का अभाव नहीं, बल्कि क्षमताओं की कमी है (सेन, 1999, पृ. 87)। बिहार में शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं की कमजोरी ने मानव विकास को सीमित किया है। गरीब परिवार गुणवत्तापूर्ण शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं का खर्च वहन नहीं कर पाते, जिसके कारण सामाजिक असमानता और अधिक बढ़ जाती है।

ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य केंद्रों की कमी, डॉक्टरों का अभाव तथा पोषण संबंधी समस्याएँ आज भी गंभीर हैं। वहीं शिक्षा के क्षेत्र में विद्यालयों की संख्या बढ़ने के बावजूद गुणवत्तापूर्ण शिक्षा सुनिश्चित करना अभी भी चुनौती बना हुआ है।

बिहार में गरीबी उन्मूलन योजनाएँ

बिहार में गरीबी कम करने के लिए केंद्र और राज्य सरकारों द्वारा अनेक योजनाएँ चलाई जा रही हैं। मनरेगा ग्रामीण गरीबों को रोजगार प्रदान करने वाली महत्वपूर्ण योजना है। इस योजना ने विशेष रूप से ग्रामीण मजदूरों और महिलाओं को आर्थिक सुरक्षा प्रदान की है।

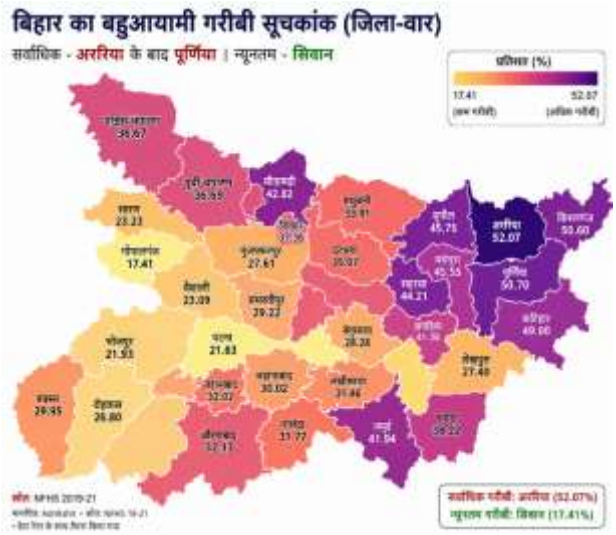
इसके अतिरिक्त सार्वजनिक वितरण प्रणाली (PDS) ने गरीब परिवारों को सस्ती दर पर खाद्यान्न उपलब्ध कराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। प्रधानमंत्री आवास योजना के माध्यम से ग्रामीण गरीबों को आवास सुविधा प्राप्त हुई, जिससे उनकी सामाजिक सुरक्षा में वृद्धि हुई।

सामाजिक परिवर्तन और आधुनिकीकरण

गरीबी उन्मूलन योजनाओं ने बिहार में सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को तेज किया है। ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा, सड़क, मोबाइल इंटरनेट तथा बैंकिंग सेवाओं के विस्तार से सामाजिक गतिशीलता बढ़ी है (बिहार आर्थिक सर्वेक्षण, 2024, पृ. 31)। डिजिटल बैंकिंग और मोबाइल तकनीक के कारण ग्रामीण समाज आधुनिक आर्थिक व्यवस्था से अधिक जुड़ने लगा है।

आधुनिकीकरण सिद्धांत के अनुसार आर्थिक विकास सामाजिक संस्थाओं में परिवर्तन लाता है (इंकलेस, 1974, पृ. 52)। बिहार में पंचायतों में महिलाओं की भागीदारी, डिजिटल बैंकिंग तथा शिक्षा के विस्तार ने पारंपरिक सामाजिक संरचना को प्रभावित किया है। अब ग्रामीण समाज में महिलाओं, युवाओं और कमजोर वर्गों की सामाजिक भागीदारी पहले की तुलना में अधिक बढ़ी है।

बिहार का सामाजिक-आर्थिक मानचित्र





ऊपर प्रदर्शित मानचित्रों से स्पष्ट होता है कि बिहार के सीमांचल और उत्तरी जिलों में गरीबी का स्तर अधिक है। बाढ़ प्रभावित क्षेत्रों में विकास की गति अपेक्षाकृत धीमी रही है।

चुनौतियाँ

यद्यपि बिहार में गरीबी उन्मूलन के क्षेत्र में पिछले कुछ वर्षों में उल्लेखनीय प्रगति हुई है, फिर भी राज्य के सामने अनेक संरचनात्मक, सामाजिक तथा आर्थिक चुनौतियाँ आज भी विद्यमान हैं। विकास योजनाओं के विस्तार के बावजूद गरीबी, बेरोजगारी, अशिक्षा और सामाजिक असमानता जैसी समस्याएँ ग्रामीण समाज में गहराई से बनी हुई हैं। समाजशास्त्रीय दृष्टि से देखा जाए तो ये चुनौतियाँ केवल आर्थिक कमजोरी का परिणाम नहीं हैं, बल्कि ऐतिहासिक असमानताओं, संसाधनों के असमान वितरण तथा कमजोर सामाजिक आधारभूत संरचना से भी जुड़ी हुई हैं।

1. बेरोजगारी और प्रवास

बिहार में स्थानीय स्तर पर उद्योगों और रोजगार के अवसरों की कमी आज भी एक बड़ी समस्या है। राज्य की बड़ी आबादी कृषि पर निर्भर है, किंतु कृषि क्षेत्र में आय सीमित होने के कारण लाखों लोग रोजगार की तलाश में अन्य राज्यों की ओर पलायन करते हैं।

दिल्ली, पंजाब, हरियाणा, महाराष्ट्र और गुजरात जैसे राज्यों में बिहारी मजदूर बड़ी संख्या में कार्यरत हैं (श्रम मंत्रालय रिपोर्ट, 2024, पृ. 19)।

प्रवास का प्रभाव केवल आर्थिक नहीं, बल्कि सामाजिक भी है। लंबे समय तक परिवार से दूर रहने के कारण पारिवारिक संबंधों, बच्चों की शिक्षा तथा महिलाओं की सामाजिक स्थिति पर प्रभाव पड़ता है। ग्रामीण क्षेत्रों में पुरुषों के प्रवास के कारण महिलाओं पर घरेलू और आर्थिक जिम्मेदारियाँ बढ़ जाती हैं। इसके अतिरिक्त असंगठित क्षेत्र में कार्यरत प्रवासी मजदूरों को सामाजिक सुरक्षा और श्रमिक अधिकारों का पर्याप्त लाभ नहीं मिल पाता।

2. शिक्षा की निम्न गुणवत्ता

हालाँकि बिहार में विद्यालयों की संख्या और नामांकन दर में वृद्धि हुई है, फिर भी शिक्षा की गुणवत्ता अभी भी चिंता का विषय बनी हुई है। अनेक सरकारी विद्यालयों में शिक्षकों की कमी, आधारभूत सुविधाओं का अभाव, पुस्तकालय और प्रयोगशालाओं की अनुपस्थिति जैसी समस्याएँ मौजूद हैं (शिक्षा मंत्रालय रिपोर्ट, 2024, पृ. 14)।

ग्रामीण क्षेत्रों में विशेष रूप से बालिका शिक्षा कई सामाजिक बाधाओं से प्रभावित होती है। गरीबी के कारण अनेक परिवार बच्चों को उच्च शिक्षा नहीं दिला पाते, जिससे बाल श्रम और प्रारंभिक विवाह जैसी समस्याएँ बढ़ती हैं। समाजशास्त्रीय दृष्टि से शिक्षा सामाजिक गतिशीलता का महत्वपूर्ण माध्यम है, किंतु गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की कमी सामाजिक असमानता को बनाए रखती है।

3. स्वास्थ्य सेवाओं की कमजोरी

बिहार के ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य सेवाओं की स्थिति अभी भी अपेक्षाकृत कमजोर है। कई प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों में डॉक्टरों, दवाइयों और चिकित्सा उपकरणों की कमी देखी जाती है। मातृ एवं शिशु मृत्यु दर, कुपोषण तथा एनीमिया जैसी समस्याएँ गरीब समुदायों में अधिक पाई जाती हैं (NFHS-5 रिपोर्ट, 2024, पृ. 22)।

बाढ़ प्रभावित क्षेत्रों में स्वास्थ्य संकट और गंभीर हो जाता है, जहाँ जलजनित रोग तेजी से फैलते हैं। आर्थिक रूप से कमजोर परिवार निजी अस्पतालों का खर्च वहन नहीं कर पाते, जिसके कारण उपचार में देरी होती है। स्वास्थ्य सेवाओं की यह कमजोरी गरीबी के चक्र को और गहरा करती है, क्योंकि बीमारी के कारण परिवारों की आय और बचत दोनों प्रभावित होती हैं।

4. जातिगत असमानता

बिहार का सामाजिक ढाँचा लंबे समय से जातिगत विभाजन से प्रभावित रहा है। संसाधनों, शिक्षा और रोजगार के अवसरों पर उच्च जातियों का ऐतिहासिक प्रभुत्व रहा है, जबकि दलित, महादलित तथा अत्यंत पिछड़े वर्ग सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़े रहे हैं (घुर्ये, 1969, पृ. 91)।

हालाँकि सरकारी आरक्षण और कल्याणकारी योजनाओं ने कुछ सुधार किया है, फिर भी ग्रामीण क्षेत्रों में सामाजिक भेदभाव और संसाधनों का असमान वितरण आज भी मौजूद है। समाजशास्त्रीय दृष्टि से यह सामाजिक बहिष्करण गरीबी को पीढ़ी दर पीढ़ी बनाए रखने का कार्य करता है।

5. जलवायु संकट और प्राकृतिक आपदाएँ

बिहार हर वर्ष बाढ़ और सूखे जैसी प्राकृतिक आपदाओं का सामना करता है। कोसी, गंडक और बागमती जैसी नदियों में आने वाली बाढ़ लाखों लोगों के जीवन और कृषि उत्पादन को प्रभावित करती है (बिहार आपदा प्रबंधन रिपोर्ट, 2024, पृ. 11)। दूसरी ओर दक्षिण बिहार के कई क्षेत्रों में सूखे की समस्या भी गंभीर होती जा रही है।

जलवायु परिवर्तन के कारण कृषि उत्पादन में अस्थिरता बढ़ी है, जिससे किसानों की आय प्रभावित होती है। गरीब परिवारों के पास प्राकृतिक आपदाओं से निपटने के लिए पर्याप्त संसाधन नहीं होते, जिसके कारण वे और अधिक गरीबी की ओर धकेले जाते हैं। इसके अतिरिक्त आपदाओं के कारण शिक्षा, स्वास्थ्य और रोजगार जैसी बुनियादी सेवाएँ भी प्रभावित होती हैं।

इन सभी चुनौतियों से स्पष्ट होता है कि बिहार में गरीबी उन्मूलन केवल आर्थिक सहायता प्रदान करने से संभव नहीं है। इसके लिए रोजगार सृजन, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, सुदृढ़ स्वास्थ्य व्यवस्था, सामाजिक समानता तथा जलवायु अनुकूल विकास नीतियों की आवश्यकता है, ताकि राज्य में समावेशी और स्थायी सामाजिक परिवर्तन सुनिश्चित किया जा सके।

निष्कर्ष

बिहार में गरीबी केवल आर्थिक समस्या नहीं, बल्कि सामाजिक संरचना, जातिगत असमानता, भूमिहीनता, बेरोजगारी और कमजोर मानव विकास से जुड़ी बहुआयामी समस्या है। समाजशास्त्रीय दृष्टि से यह स्पष्ट होता है कि गरीबी सामाजिक बहिष्करण, संसाधनों के असमान वितरण तथा अवसरों की कमी का परिणाम है। ग्रामीण क्षेत्रों में दलित, महादलित, भूमिहीन मजदूर तथा कमजोर वर्ग

आज भी शिक्षा, स्वास्थ्य और रोजगार जैसी मूलभूत सुविधाओं से पूर्ण रूप से लाभान्वित नहीं हो सके हैं। यही कारण है कि आर्थिक विकास के बावजूद सामाजिक असमानता की समस्या बनी हुई है।

हाल के वर्षों में जीविका, मनरेगा, शिक्षा और स्वास्थ्य योजनाओं ने सकारात्मक परिवर्तन उत्पन्न किए हैं। महिलाओं की भागीदारी, बैंकिंग जागरूकता, स्वयं सहायता समूहों का विस्तार तथा सामुदायिक संगठन में वृद्धि हुई है। ग्रामीण महिलाओं में आत्मनिर्भरता और सामाजिक नेतृत्व की भावना विकसित हुई है, जिससे पारंपरिक सामाजिक संरचनाओं में परिवर्तन दिखाई देता है। साथ ही सड़क, संचार और डिजिटल सेवाओं के विस्तार ने भी ग्रामीण समाज को नई सामाजिक और आर्थिक संभावनाओं से जोड़ा है।

फिर भी बिहार को स्थायी सामाजिक परिवर्तन के लिए रोजगार सृजन, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाओं के विस्तार तथा सामाजिक समानता पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। राज्य में औद्योगिक विकास, कौशल प्रशिक्षण और स्थानीय रोजगार अवसरों को बढ़ाना अत्यंत आवश्यक है, ताकि युवाओं का बड़े पैमाने पर होने वाला पलायन कम हो सके। इसके अतिरिक्त शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं की गुणवत्ता में सुधार किए बिना मानव विकास को मजबूत नहीं किया जा सकता। गरीबी उन्मूलन तभी संभव है जब विकास केवल आर्थिक वृद्धि तक सीमित न रहकर सामाजिक न्याय, समान अवसर और मानव गरिमा को भी सुनिश्चित करे। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से समावेशी विकास वही माना जाएगा जिसमें समाज के कमजोर और वंचित वर्गों को भी संसाधनों, शिक्षा, स्वास्थ्य तथा निर्णय प्रक्रिया में समान भागीदारी प्राप्त हो। बिहार के संदर्भ में यही समावेशी और न्यायपूर्ण विकास भविष्य के सामाजिक परिवर्तन तथा सतत विकास की आधारशिला बन सकता है।

संदर्भ सूची

1. अमर्त्य सेन (1999), *डेवलपमेंट ऐज़ फ्रीडम*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
2. दुर्खीम, एमिल (1912), *द एलिमेंट्री फॉर्म्स ऑफ रिलिजियस लाइफ*।
3. मार्क्स, कार्ल (1867), *दास कैपिटल*।
4. वेबर, मैक्स (1922), *इकोनॉमी एंड सोसाइटी*।
5. नीति आयोग रिपोर्ट (2024)।
6. बिहार आर्थिक सर्वेक्षण (2024)।
7. विश्व बैंक रिपोर्ट (2023)।
8. NFHS-5 रिपोर्ट (2024)।
9. ग्रामीण विकास मंत्रालय रिपोर्ट (2024)।
10. बिहार जीविका वार्षिक रिपोर्ट (2024)।

'प्रभा खेतान' की आत्मकथा 'अन्या से अनन्या' में स्त्री अस्मिता की खोज

पूजा*

शोध सारांश-

'प्रभा खेतान' की आत्मकथा 'अन्या से अनन्या' स्त्री जीवन की पीड़ा, अकेलेपन, उसके आत्मसम्मान, आर्थिक रूप से स्वावलंबी और सक्षम, स्त्री पुरुष संबंध, स्त्री स्वतंत्रता और अस्मिता की खोज का दस्तावेज है। 'प्रभा खेतान' पश्चिम देश के अस्तित्ववादी और नारीवादी विचारों से प्रभावित है। स्त्री के स्वतंत्र अस्तित्व के लिए उसका आर्थिक रूप से स्वतंत्र होना अनिवार्य है। पुरुष समाज सदा स्त्री का शोषण करता आया है। स्त्री को मनुष्य श्रेणी में भी नहीं गिना जाता। सिर्फ भारत में ही नहीं अपितु पाश्चात्य देशों की आधुनिक समझे जाने वाली स्त्रियों की दशा भी अत्यंत सोचनीय है। वे निरंतर अपनी अस्मिता के लिए संघर्षरत हैं। वह भले ही आर्थिक स्तर पर अपनी पहचान बनाने में सक्षम हो जाए परंतु उनसे यह अपेक्षा की जाती है कि वह घर के सभी काम करके चार पैसे कमाने जाए। उसकी मुक्ति तभी संभव है जब उसकी कमाई पर उसका अधिकार हो। उसे स्वतंत्रता देने वाला कोई पुरुष समाज न हो। समाज में अन्या अर्थात दूसरी औरत को हीन भाव से देखा जाता है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था में उनकी स्थिति अत्यंत सोचनीय है परंतु लेखिका इस पितृसत्तात्मक व्यवस्था को चुनौती देकर रूढ़िवादी परंपराओं को तोड़कर आर्थिक स्तर पर सक्षम हो अपनी एक अलग पहचान स्थापित कर अनन्या बनती है। वे पितृसत्तात्मक व्यवस्था के ढांचे को तोड़ते हुए लकीर से हटकर अपनी एक अलग पहचान स्थापित करती है। डॉक्टर सर्राफ के साथ उनका प्रेम संबंध आत्मकथा का केंद्र है। अभय कुमार दुबे का कथन हैं- "प्रभा खेतान ने आत्मकथा लिखकर स्त्री जीवन की दुर्बलताओं के प्रामाणिक ब्यौरे पेश किए और उनके आईने में समाज को मजबूर किया है कि वह स्त्री पुरुष संबंधों पर एक बार फिर से सोचे"।[1]

बीज शब्द - स्त्री अस्मिता, अन्या, अनन्या, पितृसत्तात्मक, अस्तित्ववादी, नारीवादी, स्वावलंबी, रूढ़िवादी, स्त्री स्वतंत्रता।

'प्रभा खेतान' अपनी आत्मकथा 'अन्या से अनन्या' में लिखती है –"वैसे आत्मकथा लिखना तो स्ट्रीप्टीस का नाच है। आप चौराहे पर एक-एक कर कपड़े उतारते जाते हैं। लिखने वालों के मन में आत्म प्रदर्शन का भाव किसी न किसी रूप में मौजूद रहता है, मन के किसी कोने में हल्की सी चाहत रहती है कि लोग उसे गलत नहीं समझे"।[2]

प्रभा 'अन्या से अनन्या' में न सिर्फ अपनी अपितु समाज की सभी स्त्रियों की दयनीय स्थिति का वर्णन करती हैं। समाज में स्त्री आज भी पितृसत्ता के अधीन है। उनका बचपन अकेलेपन और कुंठाओं से भरा था। अपने ही परिवार से सदा तिरस्कृत होती रही उनकी अपनी ही मां उनसे प्यार नहीं करती थी। उनको जल्दी पीरियड्स होना, उनका चेहरा, लंबा कद, लंबे-लंबे बाल और दबा हुआ रंग उनकी मां को उनकी हर बात से परेशानी थी। पीरियड्स में उन्हें अछूत की तरह रखा गया। आज भी समाज में कई जगहों पर स्त्री के साथ दुर्व्यवहार होता है। उन्हें पीरियड्स के दौरान अछूत समझा जाता है। इस दौरान जब स्त्री को सबसे ज्यादा जरूरत अपने परिवार की होती है, परंतु उसे अकेला असहाय छोड़ दिया जाता है। उनको कभी भी अपनों का साथ नहीं मिला। उनका संपूर्ण जीवन समाज के तानों से भरा रहा। उनकी मां पढ़ी-लिखी नहीं थी परंतु फिर भी चाहती थी कि उनकी बेटी स्वावलंबी बने और आर्थिक रूप से सक्षम हो। उन्हें किसी भी तरह पुरुष पर निर्भर न रहना पड़े क्योंकि स्त्री मुक्ति तभी संभव है, जब उसके पास निर्णय लेने का अधिकार हो। उनकी मां भी जन्म

* शोधार्थी, दिल्ली विश्वविद्यालय

से ही विद्रोही रही और लेखिका को विरासत में उनका यही विद्रोही स्वभाव ही मिला। वे हमेशा इस पितृसत्तात्मक समाज को चुनौती देती रही।

समाज में दूसरी औरत की स्थिति

प्रभा अपना जीवन अपने तरीके से जीती है। समाज द्वारा स्थापित की गई लकीर पर वे कभी नहीं चली। उन्होंने अपने से 20 वर्ष बड़े डॉक्टर सर्राफ (जो कि विवाहित और पांच बच्चों के पिता थे) से प्रेम किया। वे कभी किसी की तरह नहीं बनना चाहती थी। वे नियति को नहीं स्वीकृत करती क्योंकि उनका मानना था कि अगर किसी स्त्री की गलत पुरुष से शादी हो जाए तो भी वह स्त्री बहुत असहाय हो जाती है। समाज में उनको हमेशा अन्या (अर्थात दूसरी औरत) दोयम दर्जे का ही स्थान मिला। उनकी इस आत्मकथा में न सिर्फ भारतीय बल्कि विदेशी स्त्रियों की दयनीय दशा का भी पता चलता है। समाज में लगभग सभी देशों में स्त्रियों की स्थिति असहाय ही है। केवल आधुनिक कपड़े पहनने या मेकअप करने से औरत आधुनिक या सबल नहीं हो जाती हर समाज में दूसरी औरत को कटघरें में ही खड़ा किया जाता है। पश्चिमी देशों की स्त्रियों को आधुनिक समझा जाता है, परंतु असल में उनके साथ भी यही व्यवहार होता है। स्त्री को सिर्फ वस्तु ही समझा जाता है। दुनिया में ऐसी कोई जगह नहीं है, जहां स्त्री असहाय ना हो उसके आंसू ना गिरे हो। वे वहां के समाज की शोषित स्त्रियों के दुख को भी उजागर करती हैं। समाज में जहां एक ओर दूसरी स्त्री को उपवस्त्र, घर तोड़ने वाली रखैल रंडी आदि जैसी अनेक संज्ञाएं दी जाती है। वहीं इस समाज में उन पुरुषों के लिए कोई भी शब्द नहीं बना है जो दूसरी स्त्री के साथ संबंध स्थापित करते हैं। उसको समाज कुछ भी नहीं कहता, क्योंकि यह पुरुष प्रधान समाज है। वह अपने इस संबंध को कोई भी नाम नहीं दे पाई। वे लिखती हैं "मैं क्या लगती डॉक्टर साहब की? प्रियतमा, मिस्ट्रेस, शायद आधी पत्नी पूरी पत्नी, तो मैं कभी नहीं बन सकती क्योंकि एक पत्नी पहले से मौजूद थी। भला प्रेमिका की भूमिका भी कोई भूमिका हुई। प्रेम तो सभी करते हैं प्रेम करने वाली स्त्री मां बहन पत्नी वह कुछ भी हो सकती है या फिर सीधी सीधी उसे रखैल कहो न रखैल का क्या अर्थ हुआ वही जिसे रखा जाता है जिसका भरण पोषण पुरुष करता हो"।[3] वे आर्थिक रूप से स्वतंत्र हैं, अपने पैसे स्वयं कमाती है, किसी पर निर्भर नहीं है, फिर भी उनके जीवन में अकेलापन है। वह स्वयं से प्रश्न करती है "मैं प्रभात खेतान.. मैं कौन हूं ? क्या मेरी कोई पहचान नहीं है? मैं सध्वा नहीं क्योंकि मेरी शादी नहीं हुई, मैं विधवा नहीं क्योंकि कोई दिवंगत पति नहीं, मैं कोठे पर बैठी हुई रंडी भी नहीं क्योंकि मैं अपनी देह का व्यापार नहीं करती। मैं किसी पर निर्भर नहीं करती, स्वावलंबी हूं, अपना भरण पोषण खुद करती हूं"।[4]

स्त्री स्वतंत्रता के लिए सीमोन द बोउवार का कथन है "यदि कोई सचमुच स्वतंत्रता चाहता है तो उसके लिए सबसे पहले और सबसे ज्यादा जरूरी है, नौकरी पेशा होना, आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होना यह अनिवार्य रूप से मुक्ति की पूर्व निर्धारित शर्त है"।[5]

पितृसत्तात्मक व्यवस्था को चुनौती

प्रभा पितृसत्तात्मक सोच को परत दर परत उधेड़ कर रख देती हैं। पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री को पैसा कमाने की स्वतंत्रता तो दी जाती है परंतु पुरुष उन पैसों पर स्त्री का मालिकाना हक नहीं चाहता। वह उन पैसों पर अपना नियंत्रण रखता है। वह अपने लिए 250 डॉलर का एक पर्स खरीदती है। वह कहती है कि 'मैनेजो पैसे कमाएं हैं मैं उसमें से दे दूंगी'। परंतु डॉक्टर साहब कहते हैं "तुम्हारा यह मालिकाना तेवर मैं सहन नहीं कर सकता"।[6] पुरुष वर्ग सदा स्त्री पर अपना नियंत्रण स्थापित करना चाहता है। श्रीमती केडिया जब प्रभा को ताने देती है तब भी डॉक्टर सर्राफ उन्हीं को कहते हैं कि "तुम्हारे लिए यह कोई नई बात नहीं है। व्यर्थ की संवेदनशीलता से क्या लाभ, अब तक तो तुम्हें इन सबकी आदत पड़ जानी चाहिए थी"। स्त्री अपने प्रेम के लिए खुद को पूर्णत: समर्पित कर देती है। वे चाहती है कि डॉक्टर सर्राफ उन्हें पूरा सम्मान दे और उनके समर्पण के बदले में उन्हें पूर्ण समर्पण दे ताकि समाज उन्हें बुरी नजरों से ना देखें। प्रभा का कथन है - "हम औरते प्रेम को

जितनी गंभीरता से लेती है उतनी ही गंभीरता से यदि अपना काम लेती तो अच्छा रहता। जितने आंसू डॉक्टर साहब के लिए गिरते हैं उससे बहुत कम पसीना भी यदि बहा सकूं तो पूरी दुनिया जीत लूंगी"।[7] वक्त के साथ वे अपने में सीमित हो रही थी। उनके जीवन में अकेलापन था क्योंकि समाज उन्हें उनके इस रिश्ते के साथ स्वीकार नहीं कर पा रहा था। उनके लिए बस उनकी कल्पना की जगह ही सुरक्षित थी। वे कहती है "अम्मा कहा करती- चांद को छूने की कल्पना करो तो खजूर के पेड़ तक तो पहुंचोगे और तुम्हारी चाहना ही सीमित रहेगी तो आगे कैसे बढ़ोगे, जो मिले उसी में संतोष खोज लेना भला यह भी कोई बात हुई। आज लगता है चांद की कल्पना मात्र हमारी जिंदगी को उजाले से भर देती है"।[8]

विवाह संस्था स्वतंत्रता के लिए सामाजिक बंधन

स्त्री को सदैव गुलाम बनाकर रखा गया। जब तक स्त्री अपनी स्त्री होने की गुलामी को नहीं समझेंगी और इसे नियति मानती रहेगी, उनका ऐसे ही शोषण होता रहेगा। वे विदेश में कैथी से मिलती है। वह एक स्वतंत्र आत्मविश्वासी औरत है। कैथी स्त्री की असहाय स्थिति को प्रदर्शित करते हुए कहती है "प्रभा औरत अभी मनुष्य श्रेणी में नहीं गिनी जाती और तुम अमीर गरीब का सवाल उठा रही हो। मुझे राष्ट्र का भेद समझा रही हो। हम सब औरतें अर्ध मानव है। पहले व्यक्ति तो बनो उसके बाद बात करना"।[9] प्रसिद्ध लेखिका सीमोन द बोउवार ने कहा है "कोई जन्म से स्त्री नहीं होती, समाज उसे स्त्री बनाता है"।[10] वे एक प्रतिष्ठित व्यापारिक महिला थी फिर भी समाज में दोनों की कभी बराबरी नहीं रही। स्त्री को इस प्रकार बड़ा किया जाता है कि उसे लगता है पुरुष का ख्याल रखना, उसकी सेवा करना रसोई का काम यह सब कार्य उसी के हैं। आज भी समाज यही चाहता है कि भले ही स्त्री बाहर जाकर काम करें, परंतु वह काम पर जाने से पहले घर वालों की चार रोटियां बनाकर जाए और घर का सारा काम कर के जाए। जब तक पितृसत्ता और उसका अहंकार रहेगा तब तक स्त्रियों की स्थिति पुरुषों के समान नहीं हो सकती। स्त्री का उत्पीड़न किया जाता है और उसके बावजूद भी उसे चुप रहने को कहा जाता है "खामोशी का पाठ पढ़ाने वाला कभी सोचता नहीं कि यह हिदायतें औरत को कितना अकेला कर जाती है। इन हिदयातो के कारण औरत जिस जाल में उलझती है उसी में उलझती चली जाती है"।[11] समाज में यही समझा जाता है कि चाहे स्त्री के साथ कुछ भी गलत हो जाए और यदि विवाह कर लिया जाए तो हर गलती छुप जाती है और यदि कोई स्त्री विवाह नहीं करती और उसके साथ कुछ गलत हो जाता है, तो उसे सदा कलंकित समझा जाता है। जबकि उसका इसमें कोई दोष भी नहीं होता। इसी कारण लेखिका इस विवाह नामक संस्था का सदा खंडन करती रही और लकीर से हटकर उन्होंने अपनी राह चुनी।

आर्थिक स्वतंत्रता का स्त्री के जीवन में महत्व

'प्रभा' स्त्री के आर्थिक रूप से स्वतंत्र होने पर बल देती है। वे मानती है, 'औरत की सारी स्वतंत्रता उसके पर्स में होती है'। पितृसत्तात्मक समाज या तो स्त्री को कभी आर्थिक रूप से सफल होने देना ही नहीं चाहता या केवल अपनी शर्तों पर उसे काम करने देता है। वह उसे सदा अपने नियंत्रण में रखना चाहता है। प्रभा जी व्यापार करती थी परंतु पैसे का सारा नियंत्रण डॉक्टर सर्राफ के हाथ में था। पुरुष ने सदा स्त्री को एक वस्तु के रूप में समझा है। स्त्री मुक्ति का मार्ग केवल तभी संभव है, जब उसे चयन की स्वतंत्रता दी जाए। जब वह आर्थिक स्तर पर सक्षम व स्वतंत्र हो और अपने द्वारा कमाए हुए पैसों पर उसका स्वयं का नियंत्रण हो। वह उन पैसों का प्रयोग अपनी मर्जी से कर पाए। स्त्रियों के साथ हो रहे शोषण को जड़ से खत्म करने के लिए उसे भी उसके स्वतंत्र अस्तित्व के साथ समाज में स्वीकारना होगा। समाज में स्त्री और पुरुष दोनों को समान दृष्टि से देखना होगा। उनको निर्णय लेने की स्वतंत्रता होगी और यह स्वतंत्रता देने वाला कोई पुरुष समाज नहीं हो, क्योंकि जब तक पितृसत्ता स्त्री को कमतर समझेगी वह उस पर अपना नियंत्रण रखेगी तब तक स्त्री की मुक्ति संभव नहीं है। जब पुरुष स्त्री को आगे बढ़ता हुआ देखता है तब वह उसके चरित्र पर लांछन लगाना शुरू करता

है। प्रभा खेतान ने सिमोन द बोबुआर की पुस्तक द सेकंड सेक्स का अनुवाद करते हुए भूमिका में लिखा है 'क्या देह के अलावा औरत की कोई पूंजी नहीं है'।[12]

प्रभा का व्यक्तित्व इस पूरे समाज को चुनौती दे रहा था। वे लकीर से हटकर चल रही थी। प्रभा कहती हैं "मैं वह अन्या थी जिसे निरंतर निर्मित किया जा रहा था क्योंकि महज मेरा होना ही पत्नीत्व नामक संस्था को चुनौती दे रहा था। सहमति की खोज में मैं बुरी तरह थकने लगी थी। मैं बस पति-पत्नी के बीच में वह थी एक बाहरी तत्व अनचाही स्वीकृति"।[13] पुरुष प्रधान समाज ने हमेशा अपने स्वार्थ को ध्यान में रखते हुए धर्म, समाज और कानून व्यवस्था को बनाया है। औरत ने तो अभी अपने अधिकारों को जानना और समझना एवं उनके लिए आवाज उठाना शुरू किया है। पुरुष सदा से कमजोर स्त्री से प्यार करता आया है और सफल स्त्री से वह हमेशा चिढ़ता रहा है। वह समझता है कि उसने स्त्री को अधिकार दिया है परंतु स्त्री को अधिकार देने वाला वह होता कौन है? वह भी तो स्त्री की तरह ही एक प्राणी है।

रूढ़िवादी विचारधारा का खंडन

समाज में तलाकशुदा, परित्यक्ता, और दूसरी औरत के लिए कोई स्थान नहीं है। माता-पिता उन्हें अपने पास नहीं रखते। समाज के मुख्य धारा में उन्हें स्वीकार नहीं किया जाता। उन्हें पढ़ने के लिए विदेश भेज दिया जाता है। लेखिका की मां भी उन्हें कहती है कि 'तुम विदेश में किसी को पसंद कर उससे शादी कर लेना और वही रह जाना'। वे वैश्विक स्तर पर अपनी पहचान बनाना चाहती थी ताकि लोगों को समझ आए कि डॉक्टर साहब के अलावा भी उनकी कोई हैसियत है। वे लिखती है" मैं एक नई कोड के लिए आतुर थी कुछ ऐसा मिले जो मेरी उलझन को दूर कर सके मैं अंधनगर नहीं करना चाहती थी बल्कि सही परिप्रेक्ष्य में निर्णय लेना चाह रही थी कुछ ऐसा जो मेरी अस्मिता को बचाए रखें"।[14]

'प्रभा' ने हर संभव कोशिश की कि वह डॉक्टर साहब के परिवार का हिस्सा बन पाए परंतु ऐसा कभी नहीं हो पाया। डॉक्टर साहब की मृत्यु के बाद उन्हें हर तरह की रस्म से दूर रखा गया क्योंकि समाज में दूसरी औरत को कोई स्थान नहीं दिया जाता। वे जिंदगी भर अपनी अस्मिता तलाशती रही। समाज ने कभी उन्हें स्वीकार नहीं किया। वे इन कुंठाओं से निकलने के लिए अपना व्यापार खड़ा करती हैं। देश-विदेश की यात्राएं कर स्वयं को इतना सबल बनाती है कि समाज में वे अनन्या बनती है और हिंदी साहित्य में अपनी विशिष्ट पहचान स्थापित करती हैं।

वे अपनी आत्मकथा में महादेवी जी के संदर्भ में लिखती हैं कि "महादेवी जी अमृता जी को कहती हैं जागो अमृता अब तो जागो। यह मत भूलो एक अंगार सो दीयो को जलाता है। चुनाव तुम्हारे सामने है अंगार बनना है या दीया। औरत के लिए प्यार कही नहीं है उसे व्यक्ति बनने के लिए धन मान सम्मान अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता सब चाहिए। जीवन शुरू करने के लिए उसे भी पुरुष के बराबर की जमीन चाहिए और इस जमीन को समाज से छीन कर लेना होगा"।[15] प्रभा खेतान के बारे में राजेंद्र यादव जी कहते हैं- "मुझे लगता है कि जितनी भी लेखिकाएं लिख रही है, उनमें प्रभा खेतान बौद्धिक रूप से सबसे ज्यादा मजबूत और प्रखर हैं। सबसे ज्यादा मानसिक और बौद्धिक तैयारी के साथ हिंदी में कोई लेखिका है तो वह प्रभात खेतान है"।[16]

निष्कर्ष- 'प्रभा खेतान' पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था को चुनौती देती है। स्त्री के प्रति केवल दैहिक आकर्षण का विरोध करते हुए स्वतंत्र प्रेम और सामाजिक एवं आर्थिक समानता की बात कहती हैं। वे ना सिर्फ भारतीय स्त्रियों अपितु पश्चिमी देशों की आधुनिक मानी जाने वाली स्त्रियों की दयनीय स्थिति को भी उजागर करती है। वे समाज की दृष्टि में अन्या थी फिर भी अपनी आर्थिक स्थिति को सुधार कर समाज में अपनी एक अलग पहचान स्थापित करती है और अनन्या बन जाती है। प्रभा खेतान की आत्मकथा में स्त्री की स्थिति का वर्णन करते हुए डॉक्टर सरजू प्रसाद मिश्र ने लिखा है- "अन्या से अनन्या प्रभा खेतान नामक लेखिका की नियति का इतिवृत्त भले ही हो, भारतीय नारी की दशा दिशा का दर्पण तो यह निश्चित ही है"।[17]

संदर्भ ग्रंथ :

1. हंस पत्रिका. नवंबर, 2008. पृ. 70
2. खेतान, प्रभा. अन्या से अनन्या. नई दिल्ली. राजकमल पेपरबैक्स. छठा संस्करण, 2021. पृ. 255
3. वही, पृ. 9
4. वही, पृ. 12
5. खेतान, प्रभा. स्त्री उपेक्षिता. हिंदी पॉकेट बुक्स प्रो०लि०.संस्करण,1999. पृ.50
6. खेतान, प्रभा. अन्या से अनन्या. नई दिल्ली. राजकमल पेपरबैक्स. छठा संस्करण, 2021. पृ. 7
7. खेतान, प्रभा. अन्या से अनन्या. नई दिल्ली. राजकमल पेपरबैक्स. छठा संस्करण, 2021 पृ. 15
8. खेतान, प्रभा. अन्या से अनन्या. नई दिल्ली. राजकमल पेपरबैक्स. छठा संस्करण, 2021, पृ. 169
9. खेतान, प्रभा. अन्या से अनन्या. नई दिल्ली. राजकमल पेपरबैक्स. छठा संस्करण, 2021, पृ. 212
10. खेतान, प्रभा. अन्या से अनन्या. नई दिल्ली. राजकमल पेपरबैक्स. छठा संस्करण, 2021 पृ. 57
11. खेतान, प्रभा. अन्या से अनन्या. नई दिल्ली. राजकमल पेपरबैक्स. छठा संस्करण, 2021 पृ. 94
12. खेतान, प्रभा. अन्या से अनन्या. नई दिल्ली. राजकमल पेपरबैक्स. छठा संस्करण, 2021 पृ. 164
13. खेतान, प्रभा. स्त्री उपेक्षिता. हिंदी पॉकेट बुक्स प्रो० लि०. संस्करण, 1999. भूमिका
14. खेतान, प्रभा. अन्या से अनन्या. नई दिल्ली. राजकमल पेपरबैक्स. छठा संस्करण, 2021. पृ.209
15. वही, पृ. 257, 258
16. यादव, राजेंद्र. प्रभा खेतान, अभय कुमार दुबे (संपादक). पितृसत्ता के नए रूप स्त्री और भूमंडलीकरण राजकमल प्रकाशन. पृ. 46
17. मिश्र, सरजू प्रसाद. हिंदी लेखिकाओं की आत्मकथाएं. पृ. 111

मृण्मूर्तिकला – विविध काल में प्रासंगिक

सुनीत कुमार द्विवेदी*
प्रो. विमलेश कुमार पाण्डेय**

मुण्मूर्तियों (मिट्टी की बनी मूर्ति) का इतिहास भी उतना ही प्राचीन है, जितना स्वयं मानव का इतिहास। मिट्टी द्वारा बने इन पुरावशेषों को प्रदर्शित करने का उद्देश्य जनसामान्य को मनुष्य एवं मिट्टी के आपसी समन्वय एवं मानव द्वारा मिट्टी के विविध प्रकार के उपयोग की जानकारी प्रदान करना है। वस्तुतः भारत में मिट्टी से निर्मित कलाकृतियों व वस्तुओं के माध्यम से प्राचीन काल में प्रचलित सामाजिक एवं धार्मिक मान्यताओं तथा लोक कला की जानकारी प्राप्त होती है।

जैसे–जैसे मानव का बौद्धिक विकास हुआ वैसे–वैसे ही उसकी कला के प्रयोग की प्रतिभा भी विकसित हुई। उसने अपने मनोभावों को व्यक्त करने के लिए सर्वप्रथम मिट्टी का उपयोग किया, क्योंकि सहज व सुलभ होने के साथ–साथ मूर्ति आदि के निर्माण में अपेक्षाकृत सरल थी। सम्भवतः यही कारण रहा होगा कि विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओं में प्रत्येक काल में मिट्टी की बनी मूर्तियों का निर्माण होता रहा है।

वस्तुतः मृण्मूर्तियों के प्रयोग का प्राचीनतम् उदाहरण बलूचिस्तान (पाकिस्तान) स्थित मेहरगढ़ से पास हुआ है, जिसका समय लगभग हजार वर्ष पुराना है। कालांतर में यह परंपरा हमें हड़प्पा सभ्यता के समय से प्राप्त होने लगती है। इस सभ्यता की विभिन्न पुरास्थलों से हजारों की संख्या में मृण्मूर्तियां प्राप्त हुई हैं इसमें मातृदेवी की मृणमूर्तियाँ उल्लेखनीय है। भारत में हडप्पा सभ्यता के प्रमुख स्थालों यथा धौलावीरा (गुजरात), कालीबंगा (राजस्थान) बनावली (हरियाणा) के अतिरिक्त महाराष्ट्र के नेवासा, इनामगांव आदि पुरास्थलों से भी लगभग चार हजार वर्ष पुरानी मातृ देवियों की मृण्मूर्तियों प्राप्त हुई है। कालांतर में गंगा घाटी के पुरास्थलों जैसे – राजघाट (वाराणसी), कौशांबी एवं अहिछत्र (बरेली) तथा बक्सर, पाटलिपुत्र (बिहार) आदि स्थलों से प्राप्त मृण्मूर्तियों से तत्कालीन के विकसित स्वरूप का प्रमाण प्रस्तुत करती है।

प्रारंभिक मृण्मूर्ति कला/हडप्पा काल

भारत में सबसे प्राचीन मृण्मूर्तियों हड़प्पा सभ्यता के पूरास्थलों से प्राप्त हुई है जिन्हें हाथ से थौलिया कर बनाया गया है, अर्थात इनके निर्माण में सांचों का प्रयोग नहीं किया गया। यह मृण्मूर्तियॉ मुख्यतः स्त्री प्रतिमाओं एवं पशु पक्षियों के रूप में प्राप्त हुई है। स्त्री प्रतिमाएं मातृदेवी की है जिनकी पूजा प्राचीन समय में भूमध्य सागर से गंगा घाटी तक लोकप्रिय थी। इन स्त्री मृण्मूर्तियों को प्रायः गले में हार, कमर में चौड़ी मेखला, सिर पर भारी केश विन्यास और कानों में आभूषण पहने बनाया गया है।

मातृदेवी की मृण्मूर्तियों के निर्माण की परंपरा हडप्पा संस्कृति के बाद भी प्रचलन में रही। कालांतर में उत्तर भारत के विभिन्न ऐतिहासिक पुरस्थलों से मौर्य–शुंग काल में मात्र देवी की जो मृण्मूर्तियॉ प्राप्त हुई है वे भी पूर्व परंपरानुसार ही निर्मित की गई है। कला की दृष्टि से यह प्राचीन मृण्मूर्तियां अत्यधिक सुंदर नहीं है, किंतु चित्रण की दृष्टि से प्रभावशाली है और उनके मुख एवं शरीर से भाव प्रकट होते हैं।

मौर्यकालीन मृण्मूर्तिकला

मृण्मूर्तियों को भारत में प्रथम बार मौर्य काल में कलात्मक वस्तुओं के रूप में निर्मित किया गया है। यह विकास मुख्यतः मगध तक ही सीमित था, जो मौर्य साम्राज्य की आर्थिक व राजनीतिक गतिविधियों का सबसे महत्वपूर्ण केंद्र था। इस काल में चिकोटी विधि द्वारा हाथ से मृण्मूर्तियों का निर्माण किया गया बाद में केवल चेहरे के लिए सांचे का प्रयोग किया गया। मौर्यकालीन मृण्मूर्ति कला में विदेशी प्रभाव भी दृष्टिगोचर

* शोधार्थी, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व विभाग, सल्तनत बहादुर पी.जी. कॉलेज, बदलापुर, जौनपुर, वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर

** प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व विभाग, सल्तनत बहादुर पी.जी. कॉलेज, बदलापुर, जौनपुर, वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर

होता है संभवतः यह मगध की राजधानी पाटलिपुत्र (पटना) विदेशियों के व्यापारिक एवं राजनीतिक आवागमन का परिणाम था।

मगध में वस्तुतः यह कला राजशैली से प्रभावित हो गई थी जबकि मगध के बाहरी क्षेत्रों जैसे मथुरा, कौशांम्बी आदि की कला लोक परंपरा से प्रभावित थी। मौर्य युगीन मृण्मूर्ति कला प्रमुख केंद्र मथुरा, अहिछत्र (बरेली) कौशांबी, भीटा (प्रयागराज), राजघाट (वाराणसी), बुलंदीबाग व कुम्हार (पटना) थे। मथुरा की मृण्मूर्तियां काली–भूरी मिट्टी में निर्मित है जबकि कुम्हार व बुलंदीबाग की मृण्मूर्तियां बादामी रंग की है।

शुंगकालीन मृण्मूर्तिकला

शुंगकाल की मृण्मूर्तियों में कलात्मक परिवर्तन दिखाई देता है. जो तत्कालीन समाज ने मृण्मूर्ति कला की लोकप्रियता को दर्शाता है। इस काल में हस्त निर्मित का स्थान पूर्णतया सांचे से बनाई नई मृण्मूर्तियों ने ले लिया। मूर्तियों पर अलग से शरीर के अंगों अथवा आभूषणों को पूर्व की भांति जोड़ा या चिपकाया नहीं गया है। शरीर के अंगों को ढकने के लिए महीन वस्त्रों व अलंकरण का सहारा लिया गया है, यह मृणमूर्तियां दो प्रकार से बताई गई है।

प्रथम प्रकार में अग्रभाग में सांचे का प्रयोग किया गया जबकि पृष्ठ भाग खुरदुरा है। द्वितीय प्रकार में अग्र एवं पृष्ठ दोनों भाग सांचे के प्रयोग से बनाए गए हैं। मथुरा, कौशांबी व अन्य स्थानों से अनेक सांचे प्राप्त हुए हैं। प्रथम बार शुंगकाल में गजलक्ष्मी की प्रतिमा का सृजन हुआ इसके अतिरिक्त मातृदेवी, वसुधरा, मिथुन आकृतियां विभिन्न मुद्राओं में स्त्री आकृतियां, पशु, पक्षी व खिलौना गाडियों की मृण्मूर्तियां मुख्यतः इस काल में निर्मित हुई।

कुषाण कालीन मूण्मूर्तिकला

कुषाण काल में मृण्मूर्तियों की संख्या में वृद्धि के साथ–साथ विविधता मी दिखाई देती है। इस काल में मृण्मूर्तियों का निर्माण दो प्रकार से किया गया, प्रथम प्रकार में शुंगकाल की भांति सांचे का प्रयोग कर मृण्मूर्तियां बनाई गई जिसकी संख्या अत्यल्प है, द्वितीय प्रकार से हाथ से ढालकर बनाई नई मृण्मूर्तियां हैं जो सर्वाधिक संख्या में प्राप्त होती है। अतः उनमें वह सौंदर्य नहीं है जो शुंग काल की मृण्मूर्तियों में दिखाई देता है।

ऐसा प्रतीत होता है कि कुषाण काल में प्रस्तर शिल्प को राजाश्रय मिलने के कारण मृण्मूर्ति कला उपेक्षित रही। इस काल में हल्के लाल रंग की मृण्मूर्तियाँ प्राप्त होती है जिन पर गहरे लाल रंग की परत (स्लिप) मिलती है। कुषाण कालीन मृण्मूर्तियाँ मथुरा, हुलासखेड़ा (लखनऊ) एरच (झांसी) कौशांबी आदि पुरास्थलों से प्राप्त हुई है।

गुप्तकालीन मृणमूर्ति कला

इस युग में मृण्मूर्ति निर्माण कला अपने चरमोत्कर्ष पर थी। गुप्त काल में दो विशिष्ट प्रकार की मृण्मूर्ति निर्माण शैलियां दृष्टव्य होती है। प्रथम शैली में सांचे से बनी लघु आकृतियां और छोटे अलंकृत मिट्टी के पट्ट (ब्लॉक) है, जिनका प्रयोग सामान्य जन द्वारा दैनिक घरेलू साज–सज्जा एवं धार्मिक कार्य हेतु किया जाता था। द्वितीय शैली में यही आकृतियों और अलंकृत मिटटी के पट्ट है. जिनका प्रयोग मंदिरों व मठों की सज्जा में किया गया है। गुप्त युग की कला विशुद्ध भारतीय है। इस युग की मूर्तियों के मुख पर आध्यात्मिक और आंतरिक शांति का भाव प्रदर्शित होता है। बौद्ध, जैन और पौराणिक देवी–देवताओं की मृण्मूर्तियाँ अत्यधिक संख्या में अत्यंत सौंदर्य एवं कलात्मकता से पूर्ण बनाई गई। रामायण, महाभारत एवं कृष्ण लीला के दृश्यों का अंकन मंदिरों के निर्माण में प्रयुक्त ईटों पर अत्यंत आकर्षक रूप में किया गया है। उक्त समस्त मृण्मूर्तियां सुंदर, स्वाभाविक, आकर्षक, यथार्थ तथा कलात्मक है। नारी मूर्तियां इस काल में मुख्य रूप से प्रभावशाली है जो नारी अस्मिता की अवधारणा को स्पष्ट करता है।

गुप्त काल के अवसान के बाद मृण्मूर्ति कला भारत के पूर्वी क्षेत्र विशेषकर बंगाल व बिहार तक सीमित रह गई। यद्यपि कश्मीर में भी कुछ समय तक इसके निर्माण के प्रमाण प्राप्त होते हैं। पूर्वी भारत में पाल शासकों के समय (765 से 1175 ई०) मृण्मूर्ति कला का वृहद प्रयोग प्राप्त होता है। विशेष से स्थापत्य कला में ईटों के प्रयोग के रूप में मंदिरों, मठों आदि की दीवारों पर मूर्तियों से अलंकृत ईटों का प्रयोग किया

गया जिन पर पौराणिक आख्यान प्रमुखता से अंकित किए गए। बौद्ध मनौती पट्टीकाओं का भी आत्यधिक संख्या में निर्माण इस काल में प्राप्त होता है।

उपरोक्त सभी काल की मृण्मूर्तियां अपने निहित आंतरिक गुणों के कारण विभिन्न काल में विविध रूपों एवं कलाओं के द्वारा मानव जीवन में उपयोगी रही है जो प्रत्येक सांस्कृतिक काल की अपनी विशिष्ट शैलीगत विशेषताओं के द्वारा जानी जाती थी।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची –

अग्रवाल, बी.एस. : भारतीय कला
श्रीवास्तव, वृजभूषण : प्राचीन भारतीय प्रतिमा विज्ञान एवं मूर्तिकला
काला, एस.सी. : भारतीय मृतिका कला
मिश्रा आर.एन. : भारतीय मूर्तिकला, 1975
रे. नीहार रंजन : मौर्य एण्ड पोस्ट मौर्यन आर्ट, दिल्ली 1975
गुप्ता, पी०एल० : गंगेटिक वैली टेराकोटा अर्ट पृथ्वी प्रकाशन, वाराणसी
मित्रा, रमानाथ : भारतीय मूर्तिकला का इतिहास
मिश्रा, इन्दुमती : प्रतिमा विज्ञान, 1972
दुबे, ए०के० : मध्य गंगा घाटी में अधिवास प्रक्रिया
रोय, एन.आर. : मौर्यन एण्ड शुंग आर्ट, कलकत्ता 1945
मिश्रा, विभा : कौशाम्बी की मृण्मूर्तियां
गांगुली, ओ.सी. : इण्डियन टेराकोटा आर्ट

डॉ. अंबेडकर और नारी सशक्तिकरण : एक अनुशीलन

अलका कुमारी*
डॉ. संजीव कुमार सुधांशु**

डॉ. भीमराव अंबेडकर भारतीय राजनीति में दलित चेतना, सामाजिक न्याय, मानवाधिकार, नारी सशक्तिकरण के सशक्त हस्ताक्षर है। इन्होंने सामाजिक और राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में दलित और अछूत के विमर्श को मानवीय अस्मिता तथा गरिमा के रूप में न केवल एक ज्वलंत समसामयिक मुद्दे के रूप में स्थापित किया, वरन उसके समाधान के लिए नए प्रक्रिया और व्यवस्था भी दिया तो साथ ही आगे बढ़कर उसका नेतृत्व भी किया। इन्होंने दलित और अछूत को परिभाषित किया और सदियों से शोषित वर्ग में नारियों को भी स्वीकार किया। इस संदर्भ में मूल विचारणीय तथ्य यह है कि जहाँ अछूत और दलित को इन्होंने जाति और धर्म पर आधारित माना वहीं नारी में इन्होंने इस तथ्य को स्वीकार नहीं किया उसमें सभी नारियों को दलितों के साथ एक शोषित वर्ग में रखा। यहाँ इन्होंने वर्गीय अवधारणा को स्वीकार किया, जिसमें मजदूर भी शामिल थे।

इसमें यह तथ्य स्पष्ट होता है कि डॉ0 अंबेडकर मानववादी चिंतक थे, जिन्होंने मानवीय गरिमा और अस्मिता को धर्म, वर्ण, जाति, लिंग, नस्ल तथा वर्ग से अलग हटकर देखा और उसके शोषण और पीड़ा को महसूस किया। साथ ही चिंतन को कुशल मार्गदर्शन और नेतृत्व द्वारा एक व्यवहारिक यथार्थ संघर्ष में परिणित भी किया।

डॉ. अंबेडकर ने अपने अनुभूति और भूगते हुए पीड़ा को हर दलित वर्ग में महसूस किया और उसके कष्ट निवारण को वैचारिक चिंतन तथा सामाजिक राजनीतिक संघर्ष, धार्मिक चेतना और स्वतंत्रता के बाद संवैधानिक सुरक्षा भी प्रदान किया।

नारी सशक्तिकरण का संदर्भ भी इसी संघर्ष का हिस्सा है, उस गहरी पीड़ा की अभिव्यक्ति है तो मानवीय अस्मिता और गरिमा का उद्धार भी है। इस शोधपत्र में हमने डॉ0 अंबेडकर के नारी सशक्तिकरण के आयाम को वैचारिक और संघर्ष दोनों ही प्रारूपों में स्पष्ट करने का प्रयास किया है। साथ ही कुछ समीक्षात्मक निष्कर्ष, वर्तमान परिस्थितियों के अनुसार देने का प्रयास किया है, जो आधुनिक समय में नारी संघर्ष और उत्थान में सहायक होगा, नए चितंन और प्रारूप के साथ। यहाँ यह तथ्य बहुत ही स्पष्ट है कि यद्यपि डॉ0 अंबेडकर का नारीवादी दृष्टिकोण वैश्विक परिप्रेक्ष्य में भी समीचीन है, परन्तु उसका मूल संदर्भ भारतीय है। हमने भारतीय संदर्भ में ही उसको स्पष्ट करने का प्रयास किया है।

- **भारत में नारियों की स्थिति :–**

भारत में नारियों की स्थिति को दो संदर्भो में देखा जाता है।

(1) ऐतिहासिक संदर्भ में –

(2) वर्तमान संदर्भ में –

इन दोनों ही स्थितियों में सामाजिक, राजनीतिक, संवैधानिक और आर्थिक परिस्थियों में अंतर है। चुँकि डॉ0 अंबेडकर आधुनिक युग की उपज है, परंतु सामाजिक स्थिति उनके समय में प्राचीन ऐतिहासिक धार्मिक और सामाजिक परंपराओं से ही संचालित होती थी। इसलिए इन दोनों भाषाओं का संक्षिप्त विश्लेषण आवश्यक है।

(1) ऐतिहासिक संदर्भ में– इसमें नारियों की स्थिति को विभिन्न काल खंडों में देख सकते है–

(1) वैदिक काल में – इस समय नारियों की– स्थिति गौरवपूर्ण मानी गई, विशेषकर कला, विद्या और राजनीतिक के संदर्भ में। वेद में ऋचाओं के रचियता के रूप में लोपामुद्रा आदि आती है तो युद्ध में जाने के प्रसंग भी उपस्थित थे। उतरोत्तर वैदिक काल से धार्मिक अनुष्ठानों और राजनीति तथा सामाजिक अधिकारों में कटौती शुरू हुई और उनकी क्षमता तथा कौशल को सीमित करने का प्रयास

* शोधार्थी, जयप्रकाश विश्वविद्यालय

** सहायक प्रोफेसर, दर्शनशास्त्र विभाग, राम जयपाल महाविद्यालय, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा सारण।

किया गया, जो उतरोत्तर बढ़ते रहा और वे पुरूषों पर आश्रित होते गई, पितृसतात्मक परंपरा की शुरूआत यही से मानी गई।

(2) स्मृति काल में– इसमें मूलतः वैदिक वांङमय में स्मृति आते है, जिनमें मनुस्मृति और याज्ञवलक्य स्मृति प्रसिद्ध है। इनका सामाजिक जीवन एवं व्यवस्था पर प्रभाव आज भी स्पष्ट है। इस काल में महिलाऐं पितृसता के पूर्णतः प्रभाव में आ गई।[1] जिससे इनकी स्थिति निरंतर गिरते गई। उनकी उन्मुक्तता और स्वतंत्रता पर बहुत सारे अंकुश लगाए गए। मनु ने उसे बाल्यावस्था से लेकर वृद्धावस्था तक पुरूष के नियंत्रण में रहने को कहा तो याज्ञवलक्लय आदि ने उसके चलने, बोलने आदि पर तथा विज्ञानेश्वर ने बात करने, कपड़ा पहनने आदि पर अनके प्रतिबंध आरोपित किए जिनको धार्मिक स्वरूप दिया गया।[2] इस प्रकार यह वह समय था जब सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक आदि प्रबंध आरोपित किए गए। साथ ही नारियों को कमजोर करने के जितने औजार थे, जैसे– बाल विवाह, विधवा पर नियंत्रण, सती प्रथा, नियोग, प्रताड़ना, प्रतिवाद नहीं करना, संपति से वंचित करना आदि मूलतः ये सब इस काल की देन है। जो धर्म और मोक्ष के परदे में आरोपित किए गए। शिक्षा के अभाव ने उन्हें यह ओढ़ने पर मजबूर किया जिसका मनोवैज्ञानिक प्रभाव आज तक है।

(3) बुद्ध काल में– बुद्ध ने अपने जीवन में स्त्रियों को सक्षम बनाने और आत्मचेतन होने के लिए प्रेरित किया। शिष्य आनंद के कहने पर इन्होंने स्त्रियों को सन्यास का अधिकार प्रदान किया। यद्यपि की प्रारंभिक समय में स्त्रियों को सामान्य रूप से धर्म संघ से बाहर रखना और बाद में हमेशा उनके संघ को पुरूष संघ से अधिन रखने तथा अपनी शिक्षाओं में कहीं–कहीं लैंगिक पूर्वाग्रह जैसे आरोप भी बुद्ध पर लगाए गए। मूलरूप से बुद्ध ने स्त्री स्वतंत्रता या क्षमता पर प्रतिबंध इस मामले में नहीं लगाया वरन वो मनुष्य के मनोविज्ञान से परिचित थे। और भिक्षु परंपरा को बनाए रखने को प्रतिबंध लागू किया। यद्यपि कि बौद्ध आगमों और ग्रंथों में स्वमुक्ता (ब्राह्मणी–भिक्षुणी) आदि का प्रमाण मिलता है।[3] अतः स्पष्टतः हम कह सकते है कि बुद्ध ने स्त्रियों को धर्म की शरण में आने के लिए कौमार्य या अन्य किसी शुचिता की अनिवार्यता नहीं रखीं वरन विवाहित, अविवाहित, वेश्या एवं विधवा सभी वर्ग के महिलाओं के लिए मार्ग खूला रखा। [4]

(5) कौटिल्य काल में – कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में महिलाओं के उन अधिकारों पर जोर दिया जो स्मृतिकारों ने वर्णित किया था। इन्होंने पुनर्विवाह, भरण–पोषण स्त्रीधन के साथ–साथ अनेक न्याय सम्मत नियम निर्धारित किए। यह अनेक ऐसे प्रावधान करते है जो लचिले है। कौटिल्य ने माना है कि "विवाह व्यवस्था के लचिलेपन के साथ–साथ कौटिल्य ने विवाह–विच्छेद के नियम भी तय किए। उनका मानना था कि यदि स्त्री/पुरूष अपने जीवन साथी से घृणा करते है तो वे अपनी सहमति पूर्वक विवाह संबंधों का परित्याग कर सकते है। कौटिल्य ने पत्नी के स्थायी निधि एवं भरण–पोषण कर उसकी आर्थिक स्वाधीनता को भी सुनिश्चित किया।[5]

(6) मध्य काल में – इस समय महिलाओं की स्थिति अत्यंत दयनीय थी उन्हें महज उपयोग की वस्तु समझा जाता था। बाल विवाह, बहुपत्नी प्रथा, अशिक्षा आदि ने इनकी स्थिति दयनीय कर दिया था।

(7) उपनिवेश काल में – यह मध्य काल के जड़ता से धीरे–धीरे निकलने का समय था। पाश्यात्य परंपरा और भारतीय समाज सुधारकों के प्रयास ने सरकार और समाज दोनों स्तर पर महिलाओं की स्थिति सुधारने का प्रयास किया गया।

नवजागरण और लोकतांत्रिक चेतना ने राष्ट्रीय आंदोलन की जो रूपरेखा खिंची वह महिला सशक्तिकरण की नींव बनी। इसमें पश्चिम को उदारवादी परंपरा, लोकतांत्रिक संवैधानिक व्यवस्था, राजनीतिक और सामाजिक जागरूकता शिक्षा और आंदोलन में सहभागिता ने माहिला सशक्तिकरण के नए आयाम प्रस्तुत किए। इस समय महात्मा गांधी, ज्योतिबा राव फूले, राजा राम मोहन राय, दयानंद सरस्वती आदि ने जो महिला सशक्तिकरण और जागरूकता के विचार को गति दिया डॉ0 अंबेडकर ने उसे और सशक्त बनाते हुए न केवल मानवीय गरिमा से जोड़ा बल्कि भारतीय नारीवाद की नींव को भी मजबूत किया। साथ ही उन्हें एक शोषित वर्ग में शामिल संवैधानिक प्रावधान भी सुनिश्चित किया।

➢ **सशक्तिकरण का संदर्भ और अर्थ –**

महिला सशक्तिकरण का सामान्य अर्थ है महिला को प्राधिकार क्षमता से युक्त करना अर्थात् वह न केवल निर्णय में सहभागी हो बल्कि निर्णय लेने वाले नियम और उसकी प्रक्रिया में सहभागी हो।

वह प्राधिकार परिवार हो, समाज हो या राष्ट्रीय स्तर पर नेतृत्व का हो। यह सशक्तिकरण का लोकतांत्रिक स्वरूप है, जो शक्ति के पुनर्वितरण को स्वीकार करता है।(6)

सशक्तिकरण का व्यावहारिक संदर्भ है कि समग्र जीवन का उत्थान करना। जिससे कोई व्यक्ति, वर्ग या समुदाय प्रत्येक क्षेत्र एंव कार्य में अपनी संपूर्ण क्षमता के साथ योग्य बनने का प्रयास कर सके। इसमें व्यक्ति के अधिकार, मूलभूत सुरक्षा और सम्मानीय जीवन यापन शामिल है। इसलिए कॉन्फ्रेंस ऑन सोशल डेवलपमेंट यह स्वीकार करता है कि, लोगों का सशक्तिकरण विशेषकर महिलाओं का सशक्तिकरण वह मान्यता है जो लोगों की क्षमताओं को मजबूत करना विकास का मुख्य लक्ष्य मानती है। सशक्तिकरण लोगों का उन नीतियों के निर्माण कार्यन्वयन और मूल्यांकन में पूर्ण सहभागिता की मांग करता है जो हमारे समाज के भले के लिए किए गए कार्यों को प्रभावित करती है।(7)

इसी संदर्भ संयुक्त राज्य डेवलपमेंट प्रोग्राम का भी मानना है कि सशक्तिकरण एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में अपनाया गया है जो व्यक्ति और समूह को समाज में व्याप्त सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक संबंधो के शक्ति–संतुलन को परिवर्तित के योग्य बना सके।(8)

अतः हम यह कह सकते है कि सशक्तिकरण में समानता और स्वतंत्रता की प्रक्रिया के द्वारा सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और शैक्षणिक दृष्टि से कमजोर वर्ग को ऊपर उठाने की बात की गई है।

डॉ0 अंबेडकर ने दलित वर्ग की भांति महिलाओं को भी जन्मजात रूप से शोषित माना और उनके सुधार के लिए व्यावहारिक और सैद्धांतिक दोनों ही स्तरों पर कार्य करना प्रारंभ किया। इन्होंने उन दोनों संदर्भों को स्पष्ट किया जाति के स्तर पर महिलाओं की स्थिति, वर्ग के रूप में महिलाओं की स्थिति, इस संदर्भ में यद्यपि कि उन्होंने संपूर्ण महिला समाज के सशक्तिकरण की बात किया परंतु केन्द्र में हिन्दू धर्म और इसका प्रभाव क्षेत्र ही रहा। उन्होंने ''हिन्दू स्त्री का उत्थान एवं पतन'' नामक पुस्तक लिखकर भारतीय नारी की विवेचना प्रस्तुत किया।(9)

डॉ0 अंबेडकर ने तात्कालिक समाज के यथार्थ और ऐतिहासिक विश्लेषण के आधार पर महिला सशक्तिकरण की विवेचना प्रस्तुत किया। इसमें जो मूल तत्व है वह यह है कि यहाँ पितृसतात्मक क्षमता से अलग पूर्णतः ब्राह्मणवादी व्यवस्था को केन्द्र में रखकर अपना दृष्टिकोण प्रकट करते है। वे पितृसता को ब्राह्मणवादी व्यवस्था का एक छोटा सा भाग स्वीकार करते है। और इसी संदर्भ में अपना समाधान प्रस्तुत करते है।

- **डॉ0 अंबेडकर और नारी सशक्तिकरण :–**

डॉ0 अंबेडकर का यह मानना था कि वैदिक काल, बुद्ध और कौटिल्य आदि के समय में नारी मुलतः बौद्धिक और सामाजिक क्षेत्र में एक सम्मानजनक स्थिति में थी। इनका पतन मुलतः स्मृतिकाल में शुरू हुआ जहाँ 'मनु' की भूमिका प्रमुख रही। इस व्यवस्था को डॉ0 अंबेडकर ने मनुवादी व्यवस्था माना और इसे ब्राह्मणवाद कहा। जहाँ जन्माधारित धर्मशास्त्र पर केंदित स्वयं को महान मानने की परंपरा है इस परंपरा ने स्त्रियों को भेदभाव, अधिनता और शोषण में बांध दिया। डॉ0 अंबेडकर ने इस यथार्थ को अनुभूत किया और अपना प्रयास इसी संदर्भ में किया। नारी सशक्तिकरण के वैचारिक संदर्भ में डॉ0 अंबेडकर के प्रयास को दो भागों में देखा जा सकता है :–

(i) ब्राह्मणवादी परंपरा और विचार का विरोध तथा समाज में उसके समकक्ष बौद्ध परंपरा और विचार को धार्मिक तथा सामाजिक रूप से स्थापित करने का प्रयास।

(ii) आधुनिक लोकतांत्रिक, पाश्चात्य उदारवादी, नारीवादी व्यवस्था को स्थापित कर उसे संवैधनिक और वैधानिक प्रक्रिया के रूप में स्थापित करने का प्रयास।

डॉ0 अंबेडकर ने सामाजिक संरचना के जातिगत यथार्थ को अनुभूत किया था। उनका मानना है कि यद्यपि किसी भी वर्ग में ब्राह्मण हो या शुद्र, नारी शोषित है, परंतु शुद्र के स्त्रियों की दशा और ब्राह्मण समाज के स्त्रियों की दशा में भी कुछ मौलिक अंतर है। ब्राह्मणवादी परंपरा में स्त्रियाँ अपने शोषण के बावजूद, अन्य स्त्रियों से एक भेदकारी और शोषण मूलक व्यवहार करती है। तथा उनके उत्थान को आगे नहीं आती है। अतः पहला प्रयास इनका था कि स्त्री जातिय स्वरूप से आगे आकर वर्गीय स्वरूप में सोचना और कार्य करना प्रारंभ करें। इस संदर्भ में डॉ0 अंबेडकर ने प्राथमिक स्तर पर दोनों के कार्यो और जीवन प्रणाली में

सुधार और कैसे रहना चाहिए तथा किस तरह से धर्म, परिवार और समाज के स्तर पर सोचना और व्यवहार करना चाहिए, इसे स्पष्ट किया और इसके भविष्य के बारे में इनको जागरूक करने का भी प्रयास किया।

मूल रूप से डॉ0 अंबेडकर ने समाज में व्याप्त स्त्री शोषण और भेद–भाव को तथा अन्य सभी समस्याओं को ब्राह्मणवाद की देन माना, जिनका आधार ब्राह्मण परंपरा का संविधान मनुस्मृति था। इसलिए 'स्त्री शोषण' की संरचना का पहला आयाम इन्होंने मनु की व्यवस्था को माना। साथ ही इसके विकल्प के रूप में बौद्ध परंपरा के तार्किकता को स्पष्ट किया। ऐसा इसलिए कि डॉ0 अंबेडकर ने 'धर्म को समाज के गत्यात्मक स्वरूप से जोड़ा और मानव प्रकृति के आवश्यक अंग के रूप में स्वीकार किया।[10] साथ ही इस संरचना के समाधान के रूप में बौद्ध धर्म को प्रस्तुत करना दूसरा आयाम है। ऐसा इसलिए कि ये बौद्ध धर्म को समानता, स्वतंत्रता और न्याय के साथ–साथ बंधुता से युक्त मानते है। इन दोनों संदर्भो को डॉ0 अंबेडकर के इस वैचारिक संदर्भ में देखा जा सकता है। ''आखिर मनु ने स्त्री को पदावनत क्यों किया? डॉ0 अंबेडकर ने तर्क दिया कि, बौद्ध–काल में मुख्यतः दो वर्ग (स्त्री एवं शुद्र) बुद्ध के अनुयायी बन रहे थे, जिससे ब्राह्मण धर्म की नींव डगमगाने लगी थी। बौद्ध धर्म की निंरतर फैलाती जा रही शाखाओं को रोकने के लिए मनु ने स्त्रियों की स्वतंत्रता पर निशाना साधते हुए, उन्हें इससे वंचित कर उन पर इतनी अयोग्यताऐं थोप दी कि वे पूर्ण रूप से हमेशा के लिए पंगु हो गयी।[11]

इन सबसे यहाँ यह तथ्य तो स्पष्ट हो गया कि डॉ0 अंबेडकर ने स्त्री और दलित दोनों सामाजिक समानता के लिए एक साथ एक रूप में सम्मिलित करते है। यहाँ एक तथ्य और स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए कि डॉ0 अंबेडकर स्त्रियों के स्वतंत्रता और समानता की बात करते है और उसके लिए संघर्ष की भी बात करते है, परंतु यह संघर्ष स्त्री के अकेले या पुरूष के विरूद्ध नहीं है। बल्कि ये वैचारिक समानता के आधार पर पुरूषों से सहभागिता के साथ लड़ा जाने वाला संघर्ष है। जो विचार और व्यवहार दोनों में शोषण की समाप्ति और मानवीय समानता का पक्षधर हो।

- **डॉ अंबेडकर के नारी सशक्तिकरण के संदर्भ में योजना और कार्यक्रम :**

  समाज में व्याप्त धार्मिक भेदभाव और शोषण ने लैंगिक तथा सामाजिक असमानता को जन्म दिया। डॉ0 अंबेडकर ने वैचारिक स्तर पर 'बहिष्कृत भारत' और 'मूक नायक' जैसे समाचार पत्र द्वारा इन संदर्भो को उठाने का प्रयास किया जिसमें 'नारी सशक्तिकरण और आंदोलन की रूपरेखा की वैचारिकता शामिल थी। इसी संदर्भ में इन्होंने समाज में महिलाओं की स्थिति और उनके स्थान तथा महत्व को समझाया, ''उनका मानना था कि ''मैं किसी समाज की प्रगति का अनुमान इस बात से लगाता हूँ कि उस समाज के महिलाओं की प्रगति कितनी हुई है।[12] अपने वैचारिक रूप में डॉ0 अंबेडकर स्त्री को पुरूष के समान, स्वतंत्रता तथा समानता के पक्षधर है, जिसमें– कोई किसी का शोषण नहीं करें। इसलिए महिलाओं– के एक सभा में उन्होंने यह कहा कि, ''जिस प्रकार घर–गृहस्थी की समस्याऐं – पति–पत्नि मिलकर सुलझाते है, वैसे ही समाज की समस्याऐं भी स्त्री पुरूषों द्वारा मिलकर सुलझानी चाहिए, आप पुरूषों की जन्मदाता है।[13] इनका यह दृष्टिकोण भारतीय सभ्यता और संस्कृति का परिचायक है। डॉ0 अंबेडकर ने अपने महाड़ सत्याग्रह में इस विचार को आंदोलन में स्पष्ट किया। जिसमें पुरूष और स्त्री दोनों की सामाजिक भागीदारी समान रूप से रही। भूमिसुधार आंदोलन, कालाराम मंदिर प्रवेश सभी आंदोलनों, और संघर्षों में इन्होंने इस तथ्य को स्पष्ट किया।

  डॉ0 अंबेडकर ने सामान्य स्त्री के उन सामाजिक कार्यो को बताया जिससे उनकी सामाजिक और व्यक्तिगत प्रतिष्ठा की हानि होती थी। उन्होंने अस्पृश्य वर्ग की महिलाओं को इस बात से अवगत कराया कि वे विवाह जल्द न करें, विवाह एक बोझ है। जो लड़की विवाह करती है वह अपने पति से मित्रता का दावा करे, उसकी दासी बनने से इनकार करें ऐसा करने से पूरे समाज का मान बढ़ेगा।[14] डॉ0 अंबेडकर ने समाज के हासिए और घृणित समझे जाने वाली स्त्रियों, वेश्याओं को भी सशक्त करने का प्रयास किया और उन्हें घर परिवार बसा कर दूसरे कार्य से जीविकोपार्जन करने को प्रेरित भी किया। और यह स्पष्ट रूप से कहा कि बिना इसके समाज में आप सम्मानजनक स्थान नहीं पा सकते हैं।

  डॉ0 अंबेडकर ने यह स्पष्ट रूप से स्वीकार किया कि नारी–सशक्तिकरण और समानता का मानवाधिकार के रूप में सामान्य रूप से स्वीकृति वैधानिक प्रक्रिया से ही संभव है। ऐसा इसलिए कि भारतीय पुनर्जागरण में जो समाज सुधार जैसे विधवा पुनर्विवाह, सती–प्रथा आदि का उन्मूलन समाज के साथ–साथ कठोर कानूनी प्रावधानों से ही समाप्त हुआ। ऐसा इनका अपना सामाजिक अनुभव भी था।

इसलिए ये वैधानिक प्रक्रिया के तहत एक बिल बनाने पर जोर देते है जो समाज की बुराइयां दूर करे और मानवाधिकार को भी पुष्ट करें। हिन्दू कोड बिल इसी का परिणाम रहा।

- **हिन्दू कोड बिल और डॉ0 अंबेडकर**

हिन्दू स्त्रियों के सामाजिक और आर्थिक स्थिति में सुधार के लिए डॉ0 अंबेडकर ने लोकसभा में हिन्दू कोड बिल पेश किया। इस बिल में स्त्री को विवाह विच्छेद, अल्पायु में विवाह करने पर प्रतिबंध, जीवन साथी चुनाव एवं अंतर्जातीय विवाह का अधिकार, पैतृक संपति में बेटा–बेटी को समान अधिकार, गोद लेने आदि जैसे प्रावधान थे। परंतु राजनीतिक वजहों से इसे अपने मूल स्परूप में लागू नहीं होने दिया गया। यहीं विधेयक आगे चलकर चार खंडो में लागू हुआ–

(1) द हिन्दू मैरिज एक्ट 1955
(2) द हिन्दू एक्सेशन एक्ट 1956
(3) द हिन्दू माइनारिटी एंड गार्जियनशीप एक्ट 1956
(4) द हिन्दू एडोप्सन एक्ट 1956

इन कानूनों तहत डॉ0 अंबेडकर ने स्त्रियों को कानूनन अपने अधिकार और समानता के लिए सशक्त किया। जिसमें उन्हें पुरूषों के समान अधिकार प्रदान किए गए। इन कानूनों का एक ही मकसद था, परिवार से लेकर समाज के स्तर तक हर क्षेत्र में सुधार किया जाए।[15]

इस तरह भारतीय संविधान में महिलाओं के सशक्तिकरण और समानता के लिए प्रावधान इनकी देन है। अनुच्छेद 14–16 तक में स्त्री पुरूष समानता के अनु0 15 (3) में सरकारी नौकरियों में समान अधिकार दिया गया। अनु0 16 (2) एवं 19 (1) में पुरूषों एवं स्त्री स्वतंत्रता समान हैं। इसके साथ–साथ अनु0 39 समान कार्य के लिए समान वेतन पर जोर देता हैं।

- **डॉ0 अंबेडकर और स्त्री शिक्षाः–**

डॉ0 अंबेडकर का व्यक्तित्व के स्तर पर मूल शिक्षा था। 'अप्पदीपों भव' जो शिक्षित बनो, संगठित रहो और संघर्ष करों के रास्ते आता है।

इसी संदर्भ में डॉ0 अंबेडकर ने स्त्री शिक्षा पर जोर दिया, इनका मानना था कि 'स्त्री का शिक्षित होना पूरे परिवार के शिक्षित होने की गारंटी देता है'। इन्होंने माना कि स्त्री शिक्षा समाज को ब्राह्मणवादी और पितृसता से मुक्ति का साधन है इनका स्पष्ट मानना है कि, नारी को जागृत किए बिना राष्ट्र का विकास असंभव है इसलिए नारी को शिक्षित होकर राष्ट्र की उन्नति में सहयोग करना चहिए। डॉ0 अंबेडकर ने इसके लिए अनेक प्रयास किए।[16]

- **स्वास्थ्य और परिवार नियोजन :–**

डॉ0 अंबेडकर ने स्त्रियों को अपने स्वास्थ्य के लिए जागरूक होने पर जोर दिया। इसमें सफाई के साथ–साथ भोजन और जागरूकता जरूरी तथ्य है। इन्होंने इसी के तहत परिवार नियोजन पर भी जोर दिया और दो बच्चे का सुझाव भी दिया। इनका मानना था कि महिलाओं का स्वास्थ्य पूरे परिवार विशेषकर बच्चों को ज्यादा प्रभावित करता है। इसलिए उनका स्वस्थ रहना आवश्यक हैं।

वर्तमान में भारतीय संविधान में निर्दिष्ट प्रावधानों के अनुरूप बहुत सारे राज्यों में नौकरियों में महिलाओं के लिए क्षैतिज आरक्षण, चिकित्सा और वैक्सिनेशन, सहकारिता और बैंक लोन सरकार प्रदत्त कम ब्याज पर उद्योग में अनुदान, स्वरोजगार और जीविका तथा ग्रामोद्योग में उनकी सतत भागीदारी से लेकर सेना में स्थायी कमीशन से सभी डॉ0 अंबेडकर के 'नारी सशक्तिकरण' के प्रतिफल है।

निष्कर्षः–अतः डॉ0 अंबेडकर का नारी सशक्तिकरण का सिद्धांत दो आधार पर काम करता है, ब्राह्मणवादी और पितृसतात्मक मानसिकता को समाप्त करने में और दूसरा संवैधानिक रूप से समाज में लैंगिक विभेद को समाप्त कर समानता, स्वतंत्रता और न्याय की स्थापना करने में।

इन दोनों–लक्ष्यों– का परिणाम संवैधानिक और विधायी प्रक्रिया में सरकार के योजनाओं में स्पष्ट होता है तो साथ ही समाज और शिक्षा में आधुनिक विचार और हर क्षेत्र में स्त्रियों की सहभागिता भी स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। यद्यपि कि हम यह नहीं कह सकते कि डॉ0 अंबेडकर की परिकल्पना पूर्णतः साकार हो गयी है, क्योंकि दलित और शोषित वर्ग में आदिवासी और ग्रामीण क्षेत्रों में स्त्रियों की स्वास्थ्य, समानता और स्वतंत्र आर्थिक स्वावलंबन अभी भी दूर की कड़ी है। साथ ही अभी भी धार्मिक और सामाजिक मान्यताऐं इसमें

बाधा है। ऐसे में सरकार समाज और परिवार सभी के लिए डॉ0 अंबेडकर के 'नारी सशक्तिकरण' के विचार प्रासंगिक हो जाते है।

संदर्भ

1. मित्र, डॉ0 जयशंकर (2013), प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, पृ0 366
2. याज्ञवलक्य स्मृति 2.14.18
3. जातक, सं0 301
4. अंबेडकर, भीमराव (2008) हिन्दू नारी का उत्थान एवं पतन, संपर्क प्रकाशन, नई दिल्ली– पृ0–15
5. डॉ0 अंबेडकर, संपूर्ण वाङमय (2020), खंड–7 क्रांति प्रतिक्रांति, बुद्ध तथा कार्लमार्क्स, डॉ0 अंबेडकर प्रतिष्ठान सामाजिक न्याय तथा अधिकारिता मंत्रालय भारत सरकार, पृ0–321
6. नारायण लक्ष्मी, (1999) एम्पावरमेंट ऑफ विमन थ्रू पंचायतीराज इंस्टीव्यूशन इन जेंडर प्रेसपेक्टिव, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृ0–68
7. रिपोर्ट ऑफ द कोपेनहेगेन कॉफ्रेंस ऑन सोशल डेवलपमेंट, पोंइटर 23 मार्च 1995, पृ0 सं0 9
8. पाण्डे, समिता मिश्रा (2000) वीमन एम्पावरमेंट थ्रू एन जी ओ इंटरवेशंस, ए फ्रेमवर्क फॉर एसेसमेंट, इन्स्टीट्यूट ऑफ सरल मैनेजमेंट, गुजरात, पृ0– 2
9. मित्र, ओंकार नाथ एंव ममता मणि त्रिपाठी, (2011), सर्वजन के प्रेरणास्त्रोत, डॉ0 भीमराव अंबेडकर, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, पृ0 239
10. कीर, धनजंय (1954), डॉ0 अंबेडकर लाइफ एंड मिशन पॉपुलर प्रकाशन लि0, पू0 498
11. सीमा (2015) महिला अधिकारों के अग्रदूत, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एटलाइड रिसर्च, पृ0 49
12. सुमन मंजु (2013), दलित महिलाऐं, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 142
13. नीता (2016), अंबेडकर और नारी, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ इनोवेटिव सोशल साइंस एंड ह्युमनीटिज रिसर्च, पृ–57
14. शुक्ल कुमार अभय (2003), नारी पुनरूत्थान में डॉ0 अंबेडकर की भूमिका, पृ0–6
15. चौधरी आमालाल (2010), नारी स्वतंत्रता और डॉ0 अंबेडकर, नटराज प्रकाशन, नई दिल्ली पृ0 167

गैर दलित लेखकों का दलित साहित्य में योगदान

अमित कुमार*

शोध–सार

दलित साहित्य से तात्पर्य दलित जीवन और उसकी समस्याओं पर लेखन को केन्द्र में रखकर रचे साहित्यिक रचना है, जिसका सूत्रपात 'दलित पैंथर' से माना जाता है। दलितों को हिन्दू समाज व्यवस्था में सबसे निचले पायदान पर होने के कारण न्याय, शिक्षा, समानता तथा स्वतंत्रता आदि मौलिक अधिकारों से भी वंचित रखा गया। उन्हें अपने ही धर्म में अछूत या अस्पृश्य माना गया। दलित साहित्य की शुरुआत मराठी से मानी जाती है जहाँ 'दलित पैंथर' आन्दोलन के दौरान बड़ी संख्या में दलित जातियों से आये रचनाकारों ने आम जनता तक अपनी भावनाओं, पीड़ाओं, दुखों–दर्दों को लेखों, कविताओं, निबंधों, जीवनियों, आत्मकथाओं, व्यंगों, कहानियों आदि विधाओं के माध्यम से पहुँचाया। गैर दलित लेखकों ने भी दलितों के दुःख, दर्द और पीड़ा को समझा। उन्होंने भी साहित्य में दलितों की भावनाओं और कुंठाओं को व्यक्त किया है। प्रस्तुत आलेख में गैर दलित लेखकों के द्वारा लिखे दलित साहित्य को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है।

बीज शब्दः– दलित, अस्पृश्य, बहिष्कार, दलित पैंथर, भावना, कुंठा

परिचय

भारत में 'दलित' शब्द का अत्यधिक प्रयोग 19वीं शताब्दी से शुरू हुआ है। यद्यपि 'दलित' शब्द आधुनिक है लेकिन उस शब्द से जुड़ी भावना प्राचीन काल में ही उत्पन्न हो गयी थी। प्राचीन काल में दलितों के लिए शूद्र, अतिशूद्र, चण्डाल, अंत्यज, अस्पृश्य आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है। भारतीय 'वर्ण–व्यवस्था' का जाति व्यवस्था में परिवर्तन होने से शूद्र की दयनीय अवस्था हो गयी थी। दलित जीवन को लेकर हिन्दी साहित्य में आदिकाल से ही रचनाएँ मिलती है। आदिकाल में नाथ कवियों से लेकर मध्ययुग में कबीर, सन्त रैदास, दादूदयाल आदि से होते हुए आधुनिक काल में प्रेमचंद, निराला, रेणु, नागार्जुन, सुदामा पाण्डेय 'धूमिल' जगदीशचन्द्र, अमृतलाल नागर, चतुरसेन शास्त्री आदि की रचना में दलित जीवन के दुख–दर्दों का जीवन्त दस्तावेज दिखाई देता है। इन गैर–दलित लेखकों ने भी अपनी रचनाओं के माध्यम से दलितों के जीवन को लेकर अपनी करुणा एवं सहानुभूति को दलित साहित्य में प्रस्तुत किया है।

मुख्य भाग

'दलित' शब्द संस्कृत के 'दल' धातु से बना है, जिसका अर्थ है– दबा हुआ, कुचला हुआ। शब्दकोशों के अनुसार 'दलित' शब्द का अर्थ है– 'दबाया गया, मसला गया, मर्दित किया गया, कुचला गया, विनष्ट किया गया। दलित शब्द के बदले सभी स्थानों पर अपने–अपने स्थानीय शब्द हैं। गांधी जी ने इसके लिए 'हरिजन' शब्द का प्रयोग किया है। जिसका अर्थ होता है– ईश्वर का संतान। तमिलनाडु, कर्नाटक और आंध्रप्रदेश में क्रमशः 'आदि द्रविड', 'आदि कर्नाटक', आदि आंध्रा शब्द 'दलित' के समानार्थी शब्द के रूप में प्रचलित है। यहां आदि का आशय है आदिवासी से। बाबासाहेब ने मराठी में 'बहिष्कृत' और 'अस्पृश्य' शब्द का प्रयोग किया। भारतीय संविधान में 'दलित' शब्द के बदले 'अनुसूचित जाति' और 'अनुसूचित जनजाति' का प्रयोग हुआ है।

दलित का मतलब जाति या निम्न जाति से नहीं बल्कि हर प्रांत में व्यक्तियों के महत्व के आधार पर उसे अलग–अलग नाम से संबोधित किया जाता है। इसके विवरण को डॉ. दीप्ति गुप्ता ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है– ''दलित का अर्थ जाति या निम्न जाति से नहीं है और न ही गरीब, इसका सारतत्व यह कि राज्य में व्यक्तियों को कई भागों में बॉटा जाता है और प्रत्येक भाग का अपना महत्व होता है, प्रत्येक भाग को अपना महत्व प्रदान करने का प्रयत्न किया जा रहा है। इन्हें विभिन्न नामों से हमारे देश में पुकारा जाता है– दास, दस्यु, राक्षस, असूर, निषाद, अवर्ण परिहार आदि द्रविण, मलिच्छ, स्वपच, चाण्डाल अछूत, बाहरी जातियॉ,

* शोधार्थी, विश्वविद्यालय हिन्दी–विभाग, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर
ईमेल– amitmanohar221297@gmail.com, मो. 9576218502

डिप्रेस्ड क्लास, अनुसूचित जातियॉं, हरिजन, दलित। प्रदेश के आधार पर ही इन्हें विभिन्न नामों से पुकारा जाता है।''[1]

'दलित' शब्द को परिभाषित करते हुए प्रमुख दलित चिंतक ओम प्रकाश वाल्मीकि ने लिखा है– ''दलित शब्द का अर्थ है जिसका दलन और दमन हुआ है, दबाया गया, उत्पीड़ित, शोषित, सताया हुआ, उपेक्षित, घृणित, रौदा हुआ, मसला हुआ, विनष्ट, मर्दित, पस्त–हिम्मत, हतोत्साहित, वंचित आदि से है।''[2]

'दलित' शब्द के विस्तार को रेखांकित करते हुए माता प्रसाद लिखते हैं– ''दलित शब्द का अर्थ बड़ा व्यापक है। इसमें दबाये गये, अपमानित, पीड़ित, उपेक्षित, शोषित सभी आते हैं। इसमें स्त्रियों और शूद्र वर्ग में आनेवाली पिछड़ी जातियॉं और अति पिछड़ी जातियॉं भी हैं जो दलितों की भॉंति शिक्षा सम्प्रति एकत्र करने से वंचित है और अपमानजनक जीवन जीने को विवश है।''[3]

दलित साहित्य का संबंध आदिकाल से माना जाता है किन्तु आधुनिक हिन्दी दलित साहित्य का आरम्भ अछूतानन्द जी से माना जाता है। दलित साहित्य के लेखक दलित होंगे या गैर दलित यह एक विमर्श का विषय है लेखक डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव ने इसे स्पष्ट किया है– ''आधुनिक हिन्दी साहित्य में आधुनिक दलित साहित्य का आरम्भ अछूतानंदजी से माना जाता है, जिन पर कबीर, रैदास और नानकदेव की रचनाओं का गहरा प्रभाव पड़ा था। स्वामी अछूतानन्दजी ने लोक साहित्य के माध्यम से जन–जागरण का प्रयास किया शम्बूक नाटक उन्होंने लोकभाषा में लिखा। दलित हित चिंतन का साहित्य कौन सा है, यह अभी विवाद का विषय बना हुआ है। इस साहित्य लेखन में जातिगत विभाजन केन्द्र में है। दलित साहित्य और चिन्तन से जुड़े अधिकांश विद्वत मनीषियों का मानना है कि वास्तविक दलित साहित्य वही है जो दलितों द्वारा लिखा गया है। गुलामी की यातना को जो सहता है वही इसे जानता है और जो भोगता है वही पूरा सच कह सकता है।''[4]

दलित साहित्य वह साहित्य है, जो दलितों के जीवन, उनके सुख–दुःख, उनकी सामाजिक–राजनीतिक स्थितियॉं, संस्कृति, आस्था–अनास्था, शोषण–उत्पीड़न, दमन को व्यापकता तथा गहराई के साथ प्रस्तुत करता है। दलित के उत्थान का बीड़ा सर्वप्रथम ज्योतिबा फूले तथा अम्बेदकर ने उठाया। प्रस्तुत है प्रो. चमनलाल का दलित साहित्य के संबंध में मत– ''एक प्रवृत्ति के रूप में दलित साहित्य को मान्यता सातवें दशक के आस–पास प्राप्त हुई, जब महाराष्ट्र में ज्योतिबा फुले व डॉ. अम्बेडकर के प्रभाव में उठे व्यापक सामाजिक आन्दोलन से दलित साहित्य भी एक सांस्कृतिक आन्दोलन के रूप में उभरा। लेकिन मराठी दलित साहित्य केवल आधुनिक सामाजिक आन्दोलन के कारण ही पैदा नहीं हुआ, वरन् मध्यकाल के मराठी सन्त साहित्य व इसके साथ ही पूरे भारत में उठे भक्ति आन्दोलन को भी दलित साहित्य ने अपनी परंपरा के अर्थरूप में देखा है। मराठी में नामदेव, चोखामेला, ज्ञानेश्वर, समर्थ रामदास, तुकाराम, एकनाथ आदि सन्त कवि, आधुनिक मराठी दलित साहित्यकारों के लिए आदरणीय हैं। इसी प्रकार उत्तर भारत में सन्त कबीर, रविदास, मीराबाई, दयाबाई, सहजोबाई व अन्य अनेक भक्त कवि सेन, पीपा आदि हिन्दी के दलित साहित्य के लिए प्रेरणास्रोत बने हैं।''[5]

दलित साहित्य को समझने के लिए दलित के दुख, दर्द, अत्याचार, तिरस्कार, घुटन आदि को समझना होगा– ''दलित साहित्य का संबंध एक ओर विश्व के अश्वेत साहित्य से है, तो दूसरी ओर भारत व विश्व के स्त्रीवादी साहित्य से भी। साथ ही भारत के या कुछ अति उत्साही व संकीर्ण सोच वाले दलित लेखक या विचारक मार्क्सवाद या प्रगतिवाद को कितना भी भला–बुरा क्यों न कह रहे हों। मार्क्सवाद प्रगतिवाद या जनवाद में जो बुराईयॉं या पाखण्ड वे देखते हैं, वह वास्तव में इन वादों में न होकर इन वादों की अभिव्यक्तियों में हैं या हो सकती है। ठीक वैसे ही जैसे दलित साहित्य की धारा में भी उसी प्रकार के पाखण्ड या विकृतियॉं नजर आ सकती है, जैसे इन वादों में लेकिन ये पाखण्ड या विकृतियॉं दलित साहित्य का महत्व कम नहीं कर सकतीं। इस बात को जब दलित साहित्य धारा के गम्भीर लेखक व विचारक पहचान व समझ लेंगे तो वे निश्चय ही विश्व के तमाम मानववादी साहित्य से अपनी मित्रता व एकजुटता बनाने में संकोच नहीं करेंगे।''[6]

हिन्दी में दलित साहित्य का आरंभ हीरा डोम की कविता 'अछूत की शिकायत' से माना जाता है इस कविता ने दलित की व्यथा को जनमानस तक पहुॅंचाया है। प्रो. चमनलाल ने लिखा है– ''हिन्दी में अभी तक आधुनिक दलित साहित्य का आरम्भ 1914 में प्रकाशित हीरा डोम की कविता 'अछूत की शिकायत' से माना जाता है। लेकिन दलित आकलन को गति देने वाले सामाजिक व्यक्तित्व स्वामी अछूतानन्द हरिहर के काव्य के प्रकाश में आने के बाद यह तारीख 1914 से हटकर बीसवीं सदी के बिल्कुल शुरू में ही चली जाती

है। अतः अब दलित साहित्य के प्रेरणास्रोत यदि महात्मा बुद्ध, गोरखनाथ, कबीर, रविदास नामदेव, डॉ. अम्बेदकर आदि हैं तो आधुनिक हिन्दी दलित साहित्य के अग्रदूत स्वामी अछूतानन्द स्वीकार किए जा सकते हैं। यद्यपि शोषक व वर्चस्ववादी मीडिया ने पूरी एक सदी तक स्वामी अछूतानन्द के योगदान को अँधेरे में रखने में सफलता हासिल की।''[7]

हिन्दू धर्म में वर्ण–व्यवस्था होने के कारण निची जाति के लोगों को कई तरह की सुविधाएँ प्राप्त नहीं है। डॉ. अम्बेदकर ने भी कहा है कि दलित समस्या का समाधान तभी संभव है जब मौजूदा व्यवस्था में परिवर्तन हो और दलित को संवैधानिक अधिकार दिया जाए। उन्होंने जातिगत भेद–भाव को खत्म करने की बात की है। सर्वेश कुमार मौर्य ने इसे स्पष्ट करते हुए लिखा है–''अम्बेडकर का मत है दलितों का कोई 'होम लैण्ड' नहीं है और देश की आजादी दलितों की मुक्ति से जुड़ी है। दलित समस्या का समाधान तभी संभव है जब मौजूदा व्यवस्था में परिवर्तन हो और इस समुदाय को संवैधानिक अधिकार दिया जाए। जातिगत भेद–भाव और अस्पृश्यता जैसी समस्या को समाप्त करने के लिए जरुरी है कि हिन्दू धर्म की वर्णाश्रम व्यवस्था समाप्त हो।''[8]

कहा जाता है कि 'साहित्य समाज का दर्पण है' ठीक उसी प्रकार आधुनिक हिन्दी दलित साहित्य के संबंध में कहा जा सकता है। दलित साहित्य ने अपनी क्षमता के आधार पर साहित्य में एक नई क्रांति लायी है। दलित लेखकों के साथ–साथ गैर दलित लेखकों ने भी इसे हथियार के रूप में इस्तेमाल किया है– ''वास्तव में जिस तरह 'साहित्य' सच के समर्थन में खड़ा होता है, ठीक उसी प्रकार दलित साहित्य के संदर्भ में भी यह कहा जा सकता है कि वह 'वर्ण' एवं 'जाति' केंद्रित सामाजिक व्यवस्था के शोषण, दमन एवं उत्पीड़न के खिलाफ खड़ा है। वह समाज में 'पवित्र' एवं 'उत्कृष्ट' कही जाने वाली उन परंपराओं का विरोध करता है जो एक खास समाज को तो सत्ता के केन्द्र में खड़ा करती है।''[9]

मनुस्मृति में चार वर्णों की व्यवस्था देखने को मिलती है जिसमें शूद्र वर्ण को ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्ण का गुलाम माना गया है। मनुस्मृति, नारदस्मृति, रामचरित मानस, महाभारत आदि धार्मिक ग्रन्थों में शूद्रों के संबंध में जो उपेक्षापूर्ण, अपमानजनक कथाएँ है, टिप्पणियाँ हैं, उनसे सभी सवर्णों को एक तराजू में तौलना उचित नहीं। बहुत से ब्राह्मण भी ऐसे हुए हैं जिन्होंने भेदभाव और जातिप्रथा की निंदा की है। इनमें स्वामी दयानंद सरस्वती, स्वामी नारायण, महापंडित राहुल सांकृत्यायन आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

हिन्दी साहित्य में कबीर और रैदास से पहले आदिकाल में रचित नाथ और सिद्ध साहित्य में भी वर्ण व्यवस्था का विरोध किया गया है, तब मराठी और दलित साहित्य नहीं हुआ करता था। दलित साहित्य का उद्‌भव वज्रयानी सरहपा और नाथ पंथ से माना जाता है, जो कि पूरी तरह से सही है। संत रैदास पहले दलित और दलित चेतना के कवि थे, जिन्होंने वर्ण–व्यवस्था के साथ संघर्ष किया था और उसकी व्याख्या कर्म की दृष्टि से की गई थी।

मध्यकाल में देश में मुस्लिम शासन आने तथा सूफी संतों द्वारा इस्लाम के प्रचार–प्रसार से हिन्दू धर्म के आडंबरों और भेद–भाव से पीड़ित एवं उपेक्षित बहुत से लोगों ने इस्लाम के समानता, स्वतंत्रता तथा शिक्षा के प्रति आकृष्ट होकर इस्लाम धर्म अपना लिया। समानता, स्वतंत्रता का अधिकार प्राप्त करने से इनमें चेतना उत्पन्न हुई जिससे इन्होंने शिक्षा भी प्राप्त की। उस काल में दादू, नामदेव, पलटू, कबीर, रैदास आदि दलित साहित्यकारों ने दलितों को उनका अधिकार और सम्मान दिलाने का प्रयास किया। इन्होंने जाति–पाति की निंदा कर मनुष्य को समाज में समान स्थान दिलाने की कोशिश की। इन्होंने अपने लेखन में ईश्वर का सहारा लिया और समाज में व्याप्त धार्मिक आडंबरों और भेदभाव का पुरजोर विरोध किया। संत कबीर के साहित्य में यथार्थ जीवन का चित्रण सामाजिक विद्रोह के रूप में दिखाई पड़ता है। जाति–पाति का विरोध करते हुए वे कहते हैं ''एक जाति से सब उत्पन्न कौन ब्राह्मण कौन सूदा।'' इसी काल में मीराबाई ने जाति–पाति के भेद–भाव को अस्वीकारते हुए रैदास को अपना गुरु माना था।

आधुनिक काल में दलित कविता का प्रारंभ 1914 में 'सरस्वती' में प्रकाशित हीराडोम की भोजपुरी कविता 'अछूत की शिकायत' से मानी जाती है। लक्ष्मी नारायण सुधाकर की कविता 'उत्पीड़न की यात्रा' पहली कविता है जिसमें दलितों के साथ किये जाने वाले षडयंत्र को बताया गया है। दलित साहित्य की शुरुआत मराठी से मानी जाती है जहॉ दलित पैंथर आन्दोलन के दौरान बड़ी संख्या में दलित जातियों से आए रचनाकारों ने आम जनता तक अपनी भावनाओं को लेखों, कविताओं, निबंधों, जीवनियों, व्यंग्यों, कथाओं आदि के माध्यम से पहुँचाया।

दलित साहित्य सर्वत्र चिंतन के केन्द्र रूप में सन् 1980 के बाद आया। दलित जीवन पर केन्द्रित साहित्य या दलितों द्वारा लिखित साहित्य पर भिन्न–भिन्न दृष्टियों से सोचा जाने लगा दलित जातियों को उनके सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक शैक्षिक आदि अधिकार दिलाने हेतु साहित्य की विभिन्न विधाओं में इसे केंद्र में रखकर रचनाएँ होने लगी। हिन्दी की विभिन्न साहित्य विधाओं में लिखा हुआ दलित साहित्य का दायरा अत्यंत विस्तृत है। जहॉ दलित साहित्यकारों ने अपनी स्वयं भोगी हुई पीड़ाओं को साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्ति दी वहीं गैर दलित साहित्यकार भी इसमें पीछे नहीं रहे। प्रेमचन्द, निराला, नागार्जुन, अमृतलाल नागर, त्रिलोचन साहित्यकारों ने दलित जीवन की विसंगतियों का अत्यंत यथार्थ चित्रण अपनी रचनाओं में किया है।

मुंशी प्रेमचन्द ने अपनी अनेक रचनाओं में दलितों की समस्याओं को उजागर किया है। इनके 'कर्मभूमि' और 'गोदान' नामक उपन्यास दलित समस्या पर आधारित उपन्यास है। कर्मभूमि में अछूतोद्धार को मूल समस्या के रूप में दिखाया गया है। अछूत इसमें अकेले अपनी समस्याओं से नहीं लड़ते बल्कि सवर्ण भी उनके साथ खड़े नजर आते हैं और अंततः वे अपनी कोशिश में सफल होते हैं। 'गोदान' में पंडित मातादीन और सिलिया जैसे चरित्रों के माध्यम से प्रेमचन्द ने दलित चेतना उजागर किया है। 'सद्गति', 'ठाकुर का कुऑ', 'मंदिर', 'पूस की रात', 'कफन', 'घासवाली', 'दूध का दाम', 'मुक्तिमार्ग', 'सौभाग्य' के कोड़े' आदि अनेक कहानियों में दलितों की आर्थिक, सामाजिक, शैक्षिक, धार्मिक समस्याओं को बड़े ही मार्मिक ढंग से उजागर किया है, जो पाठकों के मन को झकझोर देने वाला और इन समस्याओं पर सोचने को बाध्य करने वाला है।

हिन्दी के प्रसिद्ध साहित्यकार अमृतलाल नागर की कृति 'नाच्यो बहुत गोपाल' भी दलित जीवन पर आधारित एक महत्वपूर्ण उपन्यास है। इसमें मेहतर जाति के लोगों के जीवन को विस्तृत रूप से चित्रित किया गया है। ब्राह्मणी निर्गुनिया का मेहतर जाति के मोहना से प्रेम विवाह करना, दलित समाज में शामिल हो उनकी पीड़ा देखना, भोगना तथा अपना सम्पूर्ण जीवन उनकी उन्नति में लगा देना इस उपन्यास की मूल कहानी है।

प्रमुख आंचलिक उपन्यासकार फणीश्वर नाथ 'रेणु' का 'मैला ऑचल' और 'परती परिकथा' भी दलित विषयक उपन्यास है। मैला ऑचल के पात्र कालीचरण, डॉ. प्रशांत, बावनदास दलितोद्धार का कार्य करते हैं। चमारों की टोली में जाकर भोजन करके छुआ–छूत का विरोध भी करते हैं। मजदूरों को अपने अधिकारों के प्रति सचेत करते हैं। परती परिकथा में दिखाया गया है कि देश की आजादी के बाद दलित वर्ग के लोग अपने अस्तित्व के प्रति सचेत हो रहे हैं। उनमें परिवर्तन आ रहा है और अंत में दलित और सवर्ण मिलकर रहने लगते हैं।

पंडित सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' द्वारा लिखित 'कुल्लीभाट' में 'निराला' जी के विद्रोही तेवर और गलत सामाजिक मान्यताओं पर उनके तीखे प्रहारों ने इस उपन्यास को दलित साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान दिलाया है। नागार्जुन की 'बलचनमा' और 'वरुण के बेटे' नामक दलित विषयक उपन्यास में दलित जीवन की विभिषिका, उनके मन की छटपटाहट, असंतोष, शोषण पर प्रकाश डाला गया है। रॉगेय राघव की 'कब तक पुकारुँ' उपन्यास में नटों की चेतना के साथ–साथ नारी जीवन के सम्मान और महत्ता को भी निरूपित किया गया है।

इसी प्रकार जगदीश चन्द्र की 'धरती धन न अपना', 'नरक कुंड में वास', 'जमीन अपनी तो थी'। गिरिराज किशोर की 'परिशिष्ठ', संजीव द्वारा रचित 'धार', मदन दीक्षित की 'मोरी की ईंट', 'श्रीलाल शुक्ल' की 'राग दरबारी', भगवती चरण वर्मा की 'भूले–बिसरे चित्र', शैलेश मटियानी की 'सर्पगंधा', रामदरश मिश्र की कृति 'सूखता हुआ तालाब', विवेकी राय की 'बबूल', मन्नू भंडारी की कृति 'महाभोज', रमणिका गुप्ता की 'सीता' मैत्रेयी पुष्पा की 'आलमा कबूतरी' नमिता सिंह की 'अपनी सलीवें' में हरिजनों पर हो रहे अत्याचार, शोषण, पंचायतों की मनमानी को–ऑपरेटिव सोसाइटियों पर पूँजीपतियों का कब्जा इत्यादि समस्याओं का भंडाफोड़ किया गया है। इस प्रकार बहुतेरे गैर दलित साहित्यकारों ने दलित जीवन पर केन्द्रित अनेक रचनाओं द्वारा दलित साहित्य को समृद्ध बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

कहानी के क्षेत्र में प्रेमचन्द की 'सद्गति', 'पूस की रात', 'मंदिर', गिरिराज किशोर की 'घोड़े का नाम घोड़ा', 'गुनाहगार', 'खरबूजे', 'वह हॅसा क्यों नहीं', शैलेश मटियानी की 'सतजुगिया आदमी' चित्रा मुद्गल की 'डोमिन काकी', 'नाम', 'बलि' शिव प्रसाद सिंह की 'मुर्गे ने बॉग दी', 'इन्हें भी इंतजार है' इत्यादि के नाम उल्लेखनीय हैं। इन कहानियों के द्वारा लेखक ने दलित जीवन की विभिन्न विभिषिकाओं, पीड़ाओं, समस्याओं को पाठकों तक पहुँचाया हैं।

वर्तमान समय में हिन्दी साहित्य में दलित विषयक काव्य, कहानी, उपन्यास, नाटक, निबंध, पत्रिकाएँ, आत्मकथाएँ, समीक्षा', शोध–ग्रंथ काफी मात्रा में निकलें हैं। कविता के क्षेत्र में गैर दलित साहित्यकारों द्वारा लिखित पंडित माधव शुक्ल का 'हम अछूत', सियाराम शरण गुप्त की 'एक फूल की चाह', गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही' का 'हरिजन', ब्रह्मदत्त की 'श्रीराम प्रतिष्ठा', निराला की 'दलित जन पर करो करुणा', सुभद्रा कुमारी चौहान की 'प्रभु तुम मेरे मन की जानो' आदि कविताएँ हैं। इस तरह की और भी कई रचनाएँ हैं जो जाति व्यवस्था के दंश से पीड़ित दलित समाज की विभिन्न समस्याओं की तरफ बरबस ध्यान खींचते हैं और पाठकों को सोंचने पर विवश करते हैं।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि हिन्दी के दलित साहित्य को विस्तार प्रदान करने में गैर दलित साहित्यकारों की भूमिका भी महत्वपूर्ण रही है। साहित्य की विभिन्न विधाओं में दलित समाज की समस्याओं को केन्द्र में रखकर इन्होंने रचनाएँ की हैं तथा उनकी सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं मानसिक समस्याओं को भली–भाँति उजागर किया है। इन रचनाओं को पढ़कर यह कहा जा सकता है कि इनमें चित्रित दलित जीवन का यथार्थ पाठकों के मन को झकझोर देने वाला और अनायास ही सुधारात्मक प्रयास की ओर प्रेरित करने वाला है।

निराला, प्रेमचन्द, नागार्जुन, अमृतलाल नागर, विवेकी राय, रामदरश मिश्र, गिरिराज किशोर जैसे रचनाकारों ने दलित समस्याओं को लेकर जो साहित्य रचा है और उसमें जो सवाल उठाए हैं वह हिन्दी दलित साहित्यकारों की तमाम बड़ी रचनाओं से कहीं ज्यादा दृष्टि सम्पन्न और सापेक्ष हैं।

संदर्भ–सूचीः–

1. डॉ. दीप्ति गुप्ता, 'दलित आन्दोलन और सामाजिक न्याय', राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, संस्करण 2010, पृ. 13–14.
2. ओम प्रकाश वाल्मीकि, 'दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र', राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2008, पृ. 13.
3. माता प्रसाद, 'दलित साहित्य दशा एवं दिशा', भारतीय दलित साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, संस्करण 2003, पृ. 4.
4. डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव, 'दलित विमर्श के विभिन्न आयाम', राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, संस्करण 2010, पृ. 184
5. प्रो. चमनलाल, 'दलित साहित्य एक मूल्यांकन', राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, संस्करण 2014, पृ. 17–18.
6. प्रो. चमनलाल, 'दलित साहित्य एक मूल्यांकन', राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, संस्करण 2014, पृ. 43.
7. प्रो. चमनलाल, 'दलित साहित्य एक मूल्यांकन', राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, संस्करण 2014, पृ. 61.
8. सर्वेश कुमार मौर्य, 'दलित नाटक की आलोचना', स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2015, पृ. 77.
9. सर्वेश कुमार मौर्य, 'दलित नाटक की आलोचना', स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2015, पृ. 127.

◂◂ ▸▸

महिला सशक्तिकरणः चेतना का नया आयाम

डॉ. सै. मसरूर अब्बास ज़ैदी*

प्रस्तावनाः–

महिला असमानता हर समाज की भांति भारतीय समाज में भी उत्तर वैदिक काल के पश्चात दृष्टव्य है। इस असमानता को परंपराओं द्वारा पवित्र बनाया जाता है। इस असमानता के विरुद्व महिलायें लामबद्व हो गयी । यह सर्वविदित है कि, स्त्रियों को लेकर 19वीं शताब्दी से प्रश्न खड़े हुये हैं। इतना ही नही स्त्रैण मुद्दों पर विमर्श होने लगा। पुनर्जागरण के पश्चात महिलाओं ने इस असमानता का खुलकर विरोध किया। इतना ही नही, स्वतंत्रता के पश्चात स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों में महिला सशक्तिकरण के लिये अनेक कानून का निर्माण किया ताकि आधी आबादी को न्याय एवं प्रशासन में हिस्सेदारी मिल सके। राष्ट्रपिता गाँधी जी ने रामराज्य की संकल्पना किया उसमें महिला सशक्तिकरण भी अहम मुद्दा था।

बीज शब्द– स्त्रैण, असामनता, नारी आन्दोलन, सशक्तिकरण, शारदा अधिनियम, शोषण।

यह सर्विदित है कि, भारत में 1930 के दशक के शुभारंभ से ही महिलावादी संगठन प्रभावी भूमिका का निर्वहन करने लगे। सन् 1927 में गठित *आल इंडिया वूमेन कांफ्रेस* महिला मुद्दों को राष्ट्र के सम्मुख उठाया। इस संगठन ने सम्पूर्ण भारत में हलचल मचा दी। महिलाओं को संगठित कर मंच पर ले आयी। बम्बई में 1920 में *'अखिल भारतीय महिला परिषद'* की स्थापना की गई। इसने सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्र को अपना कार्य क्षेत्र बनाया। इसने जहाँ घरेलू उद्योगों को प्रोत्साहित किया, वहीं महिला शिक्षा को भी प्रोत्साहित किया। इसके सथ ही संसदीय समिति जैसे राजनीतिक कार्यक्रमों को भी प्रोत्साहित किया। सबसे महत्वपूर्ण घटना सन् 1926 में हुई जब अनेक महिला संगठनों ने ***एकजुटता*** का परिचय देकर, सबने परस्पर मिलकर, अखिल भारतीय महिला सम्मेलन का आयोजन किया। इसके पश्चात महिला परिषद का सम्मलेन निरन्तर किसी न किसी नगर में आयोजित किया जाने लगा। इस परिषद की यह भी विशेषता थी कि, इसमें विदेशी महिलायें भी प्रतिभाग लेती थीं और अपने विचार प्रकट करती थीं। इसके साथ ही वे भारतीय महिलाओं द्वारा जो प्रस्ताव परिषद में प्रस्तुत किये जाते थे, उनका अनुमोदन भी करती थीं।

लगभग प्रत्येक वर्ष अखिल भारतीय महिला परिषद् का आयोजन किसी न किसी नगर में आयोजित किया जाता था। इस आयोजन में मूलतः महिला समस्या व समाधान पर खुलकर विमर्श किया जाता था। सन् 1930 के आयोजन में *शारदा अधिनियम* का समर्थन किया गया। इस अधिनियम के अनुसार लड़का और लड़की एक निश्चित आयु के पश्चात ही विवाह कर सकते थे। महिलाओं की सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकार के लिये भी बहस की गयी। विधवा पुनर्विवाह को प्रोत्साहित किया गया। लडकियों को शिक्षित करने के लिये विशेष जोर दिया गया। महिला श्रमिक समस्याओं के निराकरण परिषद् की स्त्री आन्दोलन में और नारी चेतना को प्रत्साहित करने में महत्वपूर्ण भमिका है। इसके साथ ही महिलाओं की समसमायिक समस्याओं के निराकरण के लिये सुझाव दिये गये। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि अखिल भारतीय महिला परिषद् की स्त्री आन्दोलन में और स्त्री चेतना को प्रोत्साहित करने में महत्वपूर्ण भूमिका है।

महिला जागृति और महिला आन्दोलनों ने विश्व की महिलाओं को एक मंच पर लाकर स्त्री समस्याओं पर गहन विचार व मंथन होने लगा। महिलाओं की आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक स्थिति पर विचार किया जाने लगा। प्रबुद्ध महिलायें स्त्री समस्याओं पर आधारित लेख लिखने लगी। इन सबका प्रभाव पुरुष समाज और विश्व के राजनीतिज्ञों पर भी पड़ा। शायद इसीलिये *वर्ष 1975 को यूनाइटेड नेशन्स* ने *अन्तराष्ट्रीय महिला वर्ष* घोषित कर दिया। इसके पश्चात भारत के विभिन्न नगरों व महानगरों में महिला दिवस मनाया जाने लगा। इसके साथ ही महिला संगठन भी स्थापित होने लगे। चीनी आन्दोलन का नारा भी महिलाओं के लिये प्रेरणा का सबक बना कि तीसरी दुनियां की स्त्रियां *आधे आकाश की स्वामिनी* है।

* असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति शास्त्र, शिया पी0जी0 कॉलेज, लखनऊ
मो0नं0–8090780798, zaidi.masroorabbas@gmail.com

यह सर्वविदित है कि, महिला आन्दोलन के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि, इन आन्दोलनों ने भारतीय स्त्रियों की आर्थिक, सामाजिक व राजनीतिक स्थिति को प्रगतिशील बनाने में जहाँ सहायता की है, वहीं महिला शोषण, उत्पीड़न और अत्याचार में भी काफी कमी आई है।

सन् 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन में महिलाओं ने सक्रिय रूप से प्रतिभाग लिया। ''बारीसाल एवं शेष बंगाल में महिलाओं की आत्मरक्षा समितियां बनीं, उन्हें शस्त्र चलाने प्रशिक्षण दिया गया। भूमिगत नेत्रियों में अरूणा आसफ अली प्रमुख थी। प्रसिद्ध नेत्री श्रीमति अरुणा आसफ अली अनेक कष्टों को सहते हुए भी आंदोलन को संचालित करती रही। सुचेता कृपलानी भूमिगत रहते हुए देश की आजादी में मुखर ढंग से प्रतिभाग कर रही थी। सुश्री उषा मेहता का नाम बम्बई रेडियों षड्यंत्र केस में प्रसिद्ध हुआ।

भारतीय महिला आंदोलनों ने मध्य वर्ग के नए सरोकारों को नागरिक समाज और राजनीतिक समाज के समक्ष नए आयामों से परिचत कराया है। यह ध्यात्पय है कि पर्यावरण, अवास, पुनर्वास, अनौपचारिक क्षेत्र में कार्यरत महिला श्रमिकों के कल्याण आदि से सम्बन्धित मुद्दे भी भारतीय नारीवाद नवाचार की नवीन अभिव्यक्तियां है। भारत में नारीवादियों ने महिलाओं के उत्थान के नारीजगत के समस्त पहलुओं की परीक्षण कर जनमानस के समाज उठाने का कार्य किया है। यह भारत जैसे पारंपरिक देशों के लिए उल्लेखनीय सफलता है।

अंततः मैं कहना चाहूंगा कि, सम्पूर्ण महिला आंदोलन महिला चेतना से जन्मा आंदोलन है। इस आंदोलन के पश्चात महिलायें शोषण, अत्याचार, अन्याय के विरूद्व सशक्त रूप से उठ खड़ी हुयी हैं। *जैसे–गुलाबी गैंग आंदोलन।* इन महिला आंदोलनों नें अपने लक्ष्यों को प्राप्त भी किया है। जैसे–पंचायतों में महिलाओं की स्थिति सुदृढ़ हुयी है और उनके नेतृत्व का लोहा समाज मान रहा है। उपरोक्त नारीवादी आंदोलन की प्रगति महिला उभार के लिए शुलकर है।

संदर्भ ग्रंथ

1. चौधरी, बासुकी नाथ एवं कुमार, युवराज : भारतीय शासन और राजनीति, ओरियंट ब्लैकस्वान, नई दिल्ली, वर्ष 2011, पृष्ठ 391
2. सेंगर, शैलेन्द्र : राजनीति विज्ञान के सिद्धांत, एटलांटिक प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2008, पृष्ठ 62
3- हेसमथ, सी.एच : भारतीय राष्ट्रवाद और हिंदू समाजिक सुधार, प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, 1964 पृष्ठ–2
4. शर्मा, एल.एन., मुरारी, कृष्ण : राजनीतिक समाजशास्त्र, ओरियंट ब्लैकस्वॉन, नई दिल्ली, वर्ष 2014, पृष्ठ 199
5. विश्वेश्वरण, कमला : विमेन क्वेश्चन, इंडियन नेशनलिज्म, पी.एच.डी. डिसर्टेशन, स्टेन फोर्ड यूनिवर्सिटी,1990,पृ 22
6. रमेश विश्वनाथ : इम्पावरिंग विमेन, योजना, भाग 47, मार्च 2003

दलित साहित्य की आत्माभिव्यक्ति : जूठन

बैजू कुमार राम*
डॉ. रामदुलार साहनी**

शोध-सार:

ओमप्रकाश वाल्मीकि का द्वारा रचित जूठन हिंदी दलित साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण दस्तावेज है। यह ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा है जो उनकी अनुभूति की अभिव्यक्ति करता है। यह साहित्य व्यक्ति की पीड़ा को व्यक्त नहीं करता है बल्कि समिष्टि की अभिव्यक्ति बनकर समाज के समक्ष प्रस्तुत होता है। यह हिंदी दलित साहित्य में प्रथम आत्मकथा के रुप में समाज के समकक्ष आता है। जो दलित जीवन की आत्मअभिव्यक्ति है। जिस तरह साहित्य समाज का दर्पण होता है। उसी प्रकार जूठन यह दलित साहित्य को व्यक्त करता है।

बीज शब्द : आत्मकथा, सामाजिक, अस्पृश्यता, दलित सहित्य, मार्क्सवादी, सम्प्रदायिकता, समाजशास्त्र ।

'दलित' शब्द का शाब्दिक अर्थ होता है जिनको दमन या दवाया गया । वास्तव में भारतीय वैदिक ग्रंथों ने वर्णों की चार श्रेणी बनाई, जिनमें सभी वर्गों के कार्य एवं दायित्व पूर्व निर्धारित थे। सबसे नीचले पायदान पर 'शुद्रों' को रखा गया । इनका दायित्व ऊपर के तीनों वर्णों की सेवा करना था। इनका सामाजिक, मानसिक, आर्थिक एवं धार्मिक रूप से दमन किया गया। अर्थात इन्हें , वे सारे मानवीय अधिकार व सम्मान से वंचित रखा गया जो ऊपर उल्लेखित तीनों वर्षों को प्राप्त थे; जिन्हें वर्तमान में दलित नाम से जानते है। और इनके द्वारा लिखित साहित्य को दलित साहित्य कहा जाता है। "दलित सहित्य दलित लेखको द्वारा लिखित साहित्य है, जो सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और मानसिक रूप से उत्पीड़ित लोगों की बेहतरी के लिए लिखा गया हो, जो सच्चे अनुभावों पर आधारित हो और जीवंत भाषा में लिखा गया हो।"[1]

प्रारंभ में 'दलित साहित्य' के नामकरण को लेकर मतभेद थे। कुछ लेखकों के अनुसार 'दलित' शब्द का अर्थ कुचला हुआ, दमित या वंचित है और इस आधार पर वे अभावग्रस्त या वांचन के शिकार किसी भी समुदाय के व्यक्ति को दलित मानते हैं। परतु वास्तविक स्थिति अलग है । "यह कहना गलत नहीं है कि आर्थिक रूप से कमजोर और शोषित लोग दूसरे समुदायों में नहीं है। पर, यह मानना सर्वचा अनुचित होगा कि वे सामाजिक रूप से भी दीन-हीन है। एक गरीब ब्राहमण का सामाजिक अपमान नहीं होता, अभितु, वह गरीबी से ग्रस्त होते हुए भी समाज में विशेषाधिकारों का उपभोग कसा है, जो उन्हें जन्म से प्राप्त है।"[2]

अतः दलित वे है जिनका सामाजिक एक विशेष वर्ग के समूह से होने के कारण अस्पृश्यता कठोर नियम लागू किया गया और उनका सामाजिक, आर्थिक, एवं मानसिक शोषण किया गया। उन्हें गंदे और कठोर कार्य करने के लिर बाध्य किया गया एवं शिक्षा तथा स्वेच्छा से व्यवसाय अपनाने और करने पर रोक लगाकर सामाजिक निर्योग्यता का नियम लागू किया । वास्तव में वो ही 'दलित' है।

उन्होंने जाति के आधार पर साहित्य का विभाजन किया जाने पर रोष प्रकट किया उनका कहना है कि इससे साहित्य कमजोर और उसपर सम्प्रदायिकता जैसे तत्वों का प्रभाव पड़ सकता है, जो साहित्य के हित में अच्छा नहीं होगा। इस मत पर दलित लेखको का वक्तव्य है कि साहित्य का विभाजन भाषा के आधार पर जैसे संस्कृत बंग्ला, कन्नड, उर्दू, हिन्दी, अंग्रेजी, नेपाली आदि भाषाओं का साहित्य, इसका विभाजन केवल भाषा के आधार पर नहीं बल्कि विचारधारा, मत, दर्शन जैसे- गांधीवादी, मार्क्सवादी, वामपंथी तथा दक्षिणपंथी मतों के आधार पर

* शोधार्थी (यूजीसी नेट), बाबासाहेब भीमराव अंबेडकर बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर
** सहायक प्राध्यापक (शोध–निर्देशक), हिंदी विभाग, महिला महंत दास महाविद्यालय, मुजफ्फरपुर

अगर इसका विभाजन हो सकता है तो दलितो के वेदना उत्पीडन, संघर्ष उपलब्धि, भावनाओं को व्यक्त करने के लिए दलित साहित्य क्यों नहीं हो सकता है? "जो लोग जाति के आधार पर साहित्य के आधार पर विभाजन के पक्ष में नहीं है , वो जाति आधारित सामाजिक विभाजन भूल जाते है । वे यह भूल जाते है कि जीवन व्यापार में जाति किनती अहम भूमिका निभाती है। अंतरजातीय प्रेम संबंधों में पंचायतों की कुरूर सजाए जाति के हस्तक्षेप को ही प्रमाणित करती है। जब जाति का सम समाजशास्त्र इतना कटु है, तो वह साहित्य का सत्य क्यों नहीं बन सकता है।"[3]

वे यह भी मानते है कि दलित साहित्य हिंदी साहित्य की महत्वपूर्ण एवं मजबूत शाखाओ में से एक है; जिसके अस्तित्व में आने से साहित्य कमजोर नहीं बल्कि उसे मजबूती प्राप्त होती है। । पाठकों के मन में दलितों के प्रति चेतना एवं संवेदना का विकास होता है। इन्हीं बातों को ध्यान में रखते हुए दलितों ने स्वयं अपनी पीड़ा को लिपिब्ध किया। उन्होंने अपने जीवन यात्रा में जिन कठिनाईयों को यथार्थ रूप में भोगा उसी स्मृतियों को और अनुभवों को आधार बनाकर 'दलित साहित्य की रचना की । उन्हें ही दलित साहित्य की श्रेणी में रखा गया है । दूसरे शब्दों में दलित साहित्य' वह साहित्य है जिसकी रचना स्वयं दलितों द्वारा की गई है। ऐसा कतई नहीं है कि गौरदलितों लेखको ने दलित साहित्य की रचना नहीं की । बहुत से गैर दलित रचनाकारों ने दलित साहित्य की रचना की है और कर भी रहे है। परंतु उसे दलित साहित्य के अंतर्गत नहीं रखा जा सकता क्योंकि "सवाल अनुभूतियों और चिन्तन का है। दलित जीवन की पीड़ा की जैसी अनुभूतियाँ एक दलिता की होती है, वैसी अनुभूतियाँ एक स्वर्ण को नहीं हो सकती ।"[4] अर्थात प्रश्न स्वानुभूति एवं सहानुभूति है। गैर दलित लेखक के मन में दलितों की पीड़ा, दीन-दैन्य दशा, संघर्ष, सामाजिक अन्याय के प्रति सहानुभूति तो रखता है परंतु स्वानुभूति नहीं। स्वानुभूति केवल उस व्यक्ति के पास हो सकता है जिन्होंने उसे जिया या उसे भोगा है। दलित साहित्य हिन्दी साहित्य के समानांतर चलती आ रही। अतः दलित साहित्य का इतिहास उतना ही पूराना है जितना हिंदी साहित्य का इतिहास । आदिकालीन सिद्ध एव नाथ कवियों की वर्णव्यवस्था विरोधी चेतना मध्यकाल में कबीर, रैदास अन्य दालित कवियों में प्रस्फुटित हुई । उसके बाद लम्बे समयान्तराल में आकर अछूतानन्द एवं इन्ही के समय में डॉ० अंबेडकर के दलित मुक्ति के आन्दोलन ने सम्पूर्ण देश को उद्वेलित कर दिया था। आधुनिक दलित साहित्य की शुरुआत मराठी भाषा से हुई । जिसमें दलित साहित्यकारों ने अपनी , वेदना, स्वानुभूति और संघर्ष को शब्दब्ध किया । महाराष्ट्र से दलित साहित्य ही धारा बहकर हिंदी क्षेत्र में प्रवेश करती है जिसे समृद्ध बनाने में हिन्दी के महत्वपूर्ण दलित साहित्यकारों ने महती भूमिका निभाई । इस कड़ी में उन्होने दलित आत्मकथा ', उपन्यास, कविता-संग्रह, कहानी-संग्रह, आलोचना और वैचारिकी लिखी और हिंदी दलित साहित्य को नई ऊंचाई प्रदान किया। सामाजिक असामनता अपने संघर्ष, आक्रोश को साहित्य में माध्यम से अभिव्यक्त किया। दलित साहित्य "भोगा हुआ यथार्थ का साहित्य है। इसमें साहित्यकार उन्हीं कथन बातों को अभिव्यक्त करता है जिसे वह कभी अनुभव किया हो अर्थात "कला के लिये कला नहीं, बल्कि जीवन का और जीवन की जिजीविषा का साहित्य है।"[5]

आत्मकथा व्यक्ति की अनुभूति का स्वलिखित दस्तावेज है। जिसमें वे अपने संपूर्ण जीवन के वृतांत को लिखता है। वे अपने बच्चे सुख-दुख- मित्र, अमित्र, सहयोगी. शुभचिंतकों, संघर्ष, सफलता, उपलब्धियों की शब्दों की माला में पीड़ोता है। परंतु, जब दलित आत्मकथा प्रसंग आता है, तो किसी व्यक्ति विशेष की व्यथा-कथा न हो कर पूरे समाज की दस्तावेज हो जाता है। इस दृष्टिकोण से दलित आत्मकथा के रूप में ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा 'जूठन' मील पत्थर साबित होती है। इन्होंने अपनी आत्मकथा में भोगे जातिगत भेद-भाव गरीबी, अंधविश्वास, संघर्ष, शोषण, समाजिक अन्याय को शब्दबद्ध किया है।

दलित आत्मकथा लेखन सहज क्रिया नहीं है क्योकि जब व्यक्ति आत्मकथा लेखन की शुरुआत करता है तो उन्हें पुनः उसी दुनिया में स्मृतियों के माध्यम से जाना पड़ता है। जिसे कभी वे पिछे छोड़कर आगे बढ़ गए होते हैं। अगर भूतकाल का अनुभव अच्छा रहा हो तो पुनः उसे स्मरण करके उन्हें आनंद आती है परंतु 'भूतकाल' की अनुभव

बुरा होता है तो उन्हें दुगुना दुख होता है तो उन्हें पुनः उसी वेदना' को भोगना पड़ता है। जिसे स्मरण करके उनके आँखो से आँसू की धारा निकल पड़ती है। वाल्मीकि जी ने अपने मित्र के मित्र राजकिशोर के कहने के बाद "एक लम्बी जद्दोजहद के बाद मैने सिलसिलेवार लिखना शुरु किया। तमाम कष्टों , यातनाओं, उपेक्षाओं, प्रताड़नाओं को एक का फिर जाना पड़ा। उस दौरान गहरी मानसिक यंत्रणाएँ मैंने भोगी। स्वयं को परत-दर परत उधेरते हुए कई बार-लगा कितना दुखमयी है यह सब!"[6]

वाल्मीकि जी का जन्म उत्तर प्रदेश के मुजफफरनगर जिले है वरला गाँव में हुआ था। वही उनका बचपन और बीता । 11वीं तक की पढ़ाई पूरी की । हिन्दु वर्ण व्यवस्थावादी समाज में प्रत्येक जाति समूहों का अलग-अलग टोला समूहों में बटा होता है जिसमें उसके नाम से जाना जाता है। जैसे धोबी टोला, वामन तेली आदि नामों से जानते है। इनका घर तगाओं के घर से सटा 'चुड़्डों' समाज के बीच में था। वहीं गरीबी, अशिक्षा, झोपड़ी, गंदगी, दुर्गंध, नंग-धडंग, बच्चे व गंदगी से सने सुअर, घुमते कुत्ते, रोजमर्रा के झगडे, गाली गलौज- "बस यह था वह वातावरण जिसमें वचपन बीता। इस महौल में यदि वर्ण-व्यवस्था को आदर्श-व्यवस्था कहने वालो को दो-चार दिन रहना पड़ जाए तो उनकी राय बदल जा जाएगी"[7]

वाल्मीकि जी के मित्र सुक्सन सिंह को पेट पर एक घाव (फोड़ा) हो गया था, बा बहुत बड़ा और पस उसमें से हमेशा पीप निकलता रहता था । "एक दिन मास्टर ने सुक्खन सिंह को पीटते समय उस फोड़े पर ही एक घुसा मार दिया था । सुक्खन सिंह की दर्दनाक चाख निकली। फोड़ा फूट गया था । उसे तड़पता देखकर मुझे भी रोना आ गया था। मास्टर हमलोगों को देखकर लगातार गालियाँ बक रहा था। ऐसी गालियाँ जिन्हें यदि शब्दबद्ध कर दूँ तो हिन्दी की अभिजात्यतावर्ग पर धब्बा लग जाएगा।"[8]

इस तरह के वातावरण में रहते हुए वाल्मीकि जी ने 10वीं तक की शिक्षा प्राप्त की । ग्यारहवी में विज्ञान संकाय से इनका दाखिला 'इन्टर कॉलेज बरला' में हुआ । पढाई में अव्वल परंतु अध्यापकों को जातिगत द्वेष था । बारहवी में सडयंत्र करके उन्हें पढाई से दूर कर दिया जाता था। "बरहवी कक्षा में प्रैक्टिकल नहीं कर पाया था पूरे वर्ष । बोर्ड की मेरा मात्र मैं प्रविटकल नहीं ही नहीं खराब हुआ , बल्कि मौखिक साक्षात्कार में भी मुझे कम अंक मिले थे । जबकि मैंने परीक्षक के सभी प्रश्नों के संतोषजनक उत्तर दिये थे।"[9]

इस घटना बाद बाल्मीकि जी पर घोर अंधियारा के बादल छा जाता है।

मानवीय सभ्यता का विकास एक समग्र प्रक्रिया जिसमें विभिन्न परिवेश, के पृष्ठभमि भाषा के लोग जब एक साथ मिलते हैं तो उनका विकास होता है वे लिखते है " जबलपुर मे विताए दिनों ने मुझे बदलकर रख दिया था। मेरी बोलचाल बदल गई थी । उसने -बैठने का रंग-ढंग बदल गया था । कई ऐसे मित्र बन गए थे जो लगातार समसामयिक विषयों पर बहस - मुबाहिसे करते थे। मै गोष्ठियों और सांस्कृति कार्यक्रमों में सक्रिय हो रहा था।"[10] जबलपुर से उनका स्थानांतर (महाराष्ट्र) में हो गया था। इस समय बाल्मीकि जी की आयु करीब बीस वर्ष थी, सुवा एवं सुंदर शरीर । कोई देखे आकर्षित हो जाए। अम्बरमाथ में विनायक सदाशिव कुलकर्णी है वेटी सविता को वाल्मीकि जी से प्रेम हो जाता है। ओमप्रकाश जी समाज की वास्तविक स्थिति से परिचित थे। सविता और करीब आ रही थी। समय की नजाकत को समझते हुए बाल्मीकि जी यथार्थ से रूबरू कराने के लिए उसे मंदिर के पास बुलाया। वे लिखते है "अच्छा लगते हो" उसने मेरी बाँह पर अपने शरीर का भार डाल दिया था। मैने उसे दूर हटाया और कहा, " अच्छा, यदि मैं एस.सी. हूँ... तो भी ... "तुम एस.सी. कैसे हो सकते हो ? कैसे शक उसने इठलाकर कहा। क्यों? यदि हुआ तो ?" मैंने जोर दिया।

मैंने साफ शब्दों में कह दिया । सविता गम्भीर हो गई थी। उसकी आखे छलछला आई। उसने रुआँसी होकर कब "झूठ बोल रहे हो न)" नहीं सविता। यह सच है...जो तुम्हे जान लेना चाहिए..."[11]

इस प्रकार वाल्मीकि जी ने 'जूठन' आत्मकथा के माध्यम से दारुण दशा का वर्णन अत्यंत मार्मिक रूप में किया है। जूठन दलित और शोषित लोगों की समस्या को प्रकट करता है ।जूठन ने दलित समाज को शिक्षा कठोर

सामाजिक संघर्ष के माध्यम से अपनी अस्मिता की पहचान , आत्मसम्मन, मानवीय गरिमा के साथ जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा देती है।

संदर्भ सूची –

1. सिंह, डॉ. एन, दलित साहित्य के प्रतिमान, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ सं 23
2. भारती, भारती, दलित साहित्य की अवधारणा, वोधिसत्व प्रकाशन, रामपुर उत्तरप्रदेश, प्रथम संस्करण, 2006, पृष्ठ सं- 15
3. वही पृष्ठ सं 1
4. वही पृष्ठ सं 16
5. वही पृष्ठ सं 15
6. वही पृष्ठ सं 8
7. वाल्मीकि, ओमप्रकाश, जूठन प्रथम खंड, राधाकृष्ण पेपरबैक्स, जगतपूरी दिल्ली, 13वाँ संस्करण, 2025, पृष्ठ सं 11
8. वही पृष्ठ सं 14
9. वही पृष्ठ सं 83
10. वही पृष्ठ सं 106
11. वही पृष्ठ सं 121

प्रसिद्ध हिन्दीतर महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में सामाजिक चिंतन का विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ. रक्षा सिंह*

उपन्यास साहित्य में महिला उपन्यासकारों का उदय मुख्यतया स्वतंत्रता के पश्चात् से ही प्रारम्भ हो गया था। समय के समानान्तर हिन्दी के अलावा बांग्ला, असमी, उड़िया, उर्दू जो खासतौर से उत्तर भारत की क्षेत्रीय भाषा थी, में अनेकों महिला उपन्यासकारों ने अपने कृतित्व से समाज के प्रति अपनी दृष्टि एवं चिंतन धारा को औपन्यासिक विन्यास में सुमेलित करने का सुंदर प्रयास प्रारम्भ किया, जिसमें प्रमुख रूप से महाश्वेता देवी (बांग्ला), तसलीमा नसरीन (उर्दू), अमृता प्रीतम (पंजाबी) एवं अरुंधती राय (अंग्रेजी) का नाम प्रमुखता से लिया जाता है।

इसके साथ ही तमिल, तेलुगू, मलयालम और कन्नड़ जैसी दक्षिण की क्षेत्रीय भाषाओं में भी कई महिला उपन्यासकारों का उदय हुआ जिसमें तेलुगू की श्री देवी, मालती चंदूर, रंगनायकमा, तेन्नेटि हेमलता, केडुरि, कौशल्या देवी, विशालाक्षी, डी0 कामेश्वरी, वासिरेड्डी सीतादेवी, पवनि निर्मला का नाम मुख्यतया लिया जा सकता है। यह सभी महिला उपन्यासकार हिन्दीतर प्रसिद्ध उपन्यासकार के तौर पर अपनी लेखनी के माध्यम से प्रसिद्धि के कारण हिन्दी समाज को भी अपनी रचना से न केवल लाभान्वित किया बल्कि सम्पूर्ण भारत में नवचेतना की जागृति के साथ–साथ मानवीय संवेदनाओं जिसमें लैंगिक समानता के अलावा स्वतंत्रतापूर्ण गरिमामय जीवन की बोध दृष्टि भी समाहित है, से रूबरू कराने का पुनीत प्रयास किया।

प्रसिद्ध समाजशास्त्री मादाम स्तेल के अनुसार, ''जहाँ से स्त्रियाँ मुक्त होती हैं, वहीं से समाज की निर्मिति होती है।''

उक्त कथन के आधार पर हम स्त्री मुक्ति के समर्थन का एहसास कराती कुछ प्रसिद्ध महिला उपन्यासकारों के संक्षिप्त जीवन परिचय एवं उनकी रचनाओं से पैदा हुआ विमर्श समाज की प्रकृति को किस प्रकार निर्मित करता है। उसका हम विश्लेषण करेंगे एवं निष्कर्षतः यह प्रयास भी करेंगे कि रचना और रचनाकार ने समाज के बुनियादी परिवर्तन को कैसे मूर्तरूप देने का प्रयास किया?

महाश्वेता देवी– प्रसिद्ध हिन्दीतर उपन्यासकार में सबसे प्रमुख नाम बांग्ला लेखिका महाश्वेता देवी का है जिनका जन्म पूर्व में भारत के ही एक भूभाग ढाका (वर्तमान बांग्लादेश) में सन् 1926 ई0 में हुआ। उनकी लेखनी का प्रमुख विषय आदिवासी समाज रहा जो हमेशा से मुख्यधारा के सामाजिक गतिविधियों से इतर एक अलग जीवन–संसार में रहता आया था। महाश्वेता देवी उस जंगली समाज के विकास एवं समाज की मुख्यधारा में उनको शामिल करने हेतु अपनी लेखनी एवं कार्यक्रमों से लगातार प्रयास करती रहीं। जिसका जिक्र करते हुए साहित्यकार मंगलेश डबराल ने कहा, ''सबसे ज्यादा उत्पीड़ित समाज के पास पहुँचने वाली वामपंथी चेतना की यह सबसे सशक्त लेखिका जिसने जीवन और कृतित्व में दोहरेपन के बिना रचनात्मकता को जमीनी संघर्ष के साथ जोड़कर रखा।''[1]

महाश्वेता देवी ने 1942 ई0 के भारत छोड़ो आंदोलन, 1943 ई0 के बंगाल के अकाल के साथ–साथ देश के बँटवारे से उपजे विषाद का चित्रण अपनी रचनाओं के माध्यम से किया। उनकी रचनाओं पर प्रकाश डालते हुए नरेन्द्र बहादुर सिंह कहते हैं, ''महाश्वेता जी की रचनाएँ अपनी भाषा को लांघकर दूसरी भाषाओं के साहित्य का हिस्सा बनीं। महाश्वेता जी के लिए लेखन एकांतिक साधना के बजाए संघर्ष के मोर्चे की तरह हैं और उनकी रचनाओं को एक गहरा समाजशास्त्रीय महत्व है।''[2]

महाश्वेता देवी के प्रमुख उपन्यास जंगल के दावेदार, नीलछवि, हजार चौरासी की माँ, अग्निगर्भ, मूर्ति, ग्राम बांग्ला, कृष्ण द्वादशी, अमृत संचय, झांसी की रानी तथा भारत में बंधुआ मजदूर आदि हैं।

प्रमुख उपन्यास 'अग्निगर्भ' में महाश्वेता जी ने किसानों के जीवन संघर्ष को चित्रित किया और आजादी के बाद के भारत में लोकतंत्र की कोख से उपजे राजनेताओं की जमात की छलपूर्ण चरित्र एवं उनकी कथनी और करनी में अंतर को बड़ी सूक्ष्मता से दर्शित कराया है। यह राजनेता सार्वजनिक रूप से

* असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, श्री गणेश राय पी.जी. कालेज, डोभी, जौनपुर

समानता और भाईचारे की बात करते हैं परन्तु व्यक्तिगत जीवन में ऊँच–नीच और छुआ–छूत को बढ़ावा देते हैं।

साहित्य अकादमी से पुरस्कृत महाश्वेता देवी का उपन्यास 'जंगल के दावेदार' जिसका मूल बांग्ला नाम 'अरण्येर अधिकार' है वह आदिवासी समाज के नायक बिरसा मुण्डा के उद्‌भव की गाथा है। इस उपन्यास के मूल सामाजिक चिंतन को स्पष्ट करते हुए महाश्वेता देवी ने लिखा है, ''भारतवर्ष के स्वाधीनता संग्राम के इतिहास में बिरसा मुण्डा का नाम और विद्रोह अनेक दृष्टियों से स्मरणीय और सार्थक है। इस देश की सामाजिक और आर्थिक पृष्ठभूमि में उसका जन्म और अभ्युत्थान केवल एक विदेशी सरकार एवं उसके शोषण के विरूद्ध नहीं था। यह विद्रोह साथ ही साथ समकालीन सामंती व्यवस्था के विरूद्ध भी था। इतिहास की इन सब विवेचनाओं से काटकर बिरसा मुण्डा और उसके अभ्युत्थान की सही–सही विवेचना असम्भव है। लेखक के रूप में समकालीन मनुष्य के रूप में वस्तुवादी ऐतिहासिकता का समस्त दायित्व वहन करने में हम सदा प्रतिश्रुत हैं।''[3]

इसी प्रकार 'जली थी अग्निशिखा' नामक उपन्यास में महाश्वेता देवी ने 1857 की झाँसी की कथा लिखी है। साथ ही तत्कालीन झाँसी की रानी को केन्द्र में रखकर उन्होंने स्त्री–जाति का गौरव गान प्रस्तुत किया है। उसकी भूमिका में महाश्वेता देवी लिखती हैं ''1857 ई0–58 ई0 के महासंग्राम ने मध्यप्रदेश में जन–विद्रोह का रूप धारण कर लिया था।.....उद्‌देश्य, अंततः मध्य भारत में जो अग्नि प्रज्ज्वलित हुई थी वह अग्नि विद्रोह की आग थी। रानी अपने सामंतवर्ग की सीमाबद्धता और स्वार्थ भावना से अन्य लोगों से ऊपर उठ गयी थी।''[4] महाश्वेता देवी ने अपनी लेखनी के माध्यम से दलितों, आदिवासियों एवं वंचितों पर हो रहे शोषणों के खिलाफ एक यलगार छेड़ने का काम किया और उनके प्रति हो रही सामाजिक विसंगतियों पर कठोर प्रहार करते हुए शासक वर्ग की छद्‌म चालाकियों पर भी कुठाराघात किया।

अमृता प्रीतम– प्रसिद्ध उपन्यासकारों में अमृता प्रीतम की कालजयी रचनाओं का सामाजिक प्रभाव प्रमुख रूप से दृष्टिगोचर होता है। अमृता प्रीतम का जन्म 31 अगस्त 1919 ई0 को पंजाब के गुजराँवला में करतार सिंह हितकारी के घर हुआ। अपने पंजाबी साहित्य में उन्होंने स्त्री–पुरुष सम्बन्ध और उनके विविध आयामों का बड़ा ही सजीव चित्रण किया है। उनके प्रमुख उपन्यासों में 'डाक्टर देव' (1949), 'पिंजर' (1950) और 'एक सवाल' प्रसिद्ध है। अपने सुप्रसिद्ध उपन्यास 'पिंजर' में अभिव्यक्त अपने चिंतन को स्पष्ट करते हुए अमृता जी ने लिखा है, ''मेरा यह उपन्यास सामाजिक जबर के नीचे पिसी हुई एक स्त्री का जीवन पेश करता है जिसको सारी आयु अपने भीतर खालीपन के कारण अपना शरीर कंकाल (पिंजर) मात्र लगता है।''[5]

इसके अतिरिक्त अमृता प्रीतम के उपन्यासों ने साम्प्रदायिकता एवं विभाजन की त्रासदी को सामाजिक चिंतन का केन्द्रीय विषय बनाने का महत्वपूर्ण कार्य किया। अपनी रचनाधर्मिता पर ईमानदारी से प्रकाश डालते हुए अमृता प्रीतम लिखती हैं, ''मेरी जज्म में चिंतन की अहमियत है, उसके बयान के माध्यम की नहीं। वह जो भी सहज रूप से अख्तियार करता है, मैं उसमें दखल अंदाज नहीं होती। मैं कई बार कविता को कहानी बनते देखा है और कहानी कई बार अपने ढाई कदमों में इतनी जमीन लपेट लेती है कि अपने आप नाविल बन जाती है। कई बार नाविल का तसव्वुर अपनी बाँहों में आसमान को लपेटकर जब कागज तक लौटता है, तब एक नज्म बन चुका होता है।''[6]

तसलीमा नसरीन– बांग्लादेश की सुप्रसिद्ध लेखिका तसलीमा नसरीन का जन्म 25 अगस्त 1962 ई0 में पूर्वी पाकिस्तान (वर्तमान बांग्लादेश) के मयमन सिंह कस्बे में हुआ। एम0बी0बी0एस0 की पढ़ाई के उपरान्त 1986 ई0 से 1993 ई0 तक सरकारी चिकित्सालयों में सेवा देने का कार्य किया। धार्मिक पुरातनपंथी एवं देश की व्यवस्था में उनके द्वारा किये जाने वाले हस्तक्षेप एवं उसके केन्द्र में उपजी पुरुष प्रधान समाज की दयनीय स्थिति से रूबरू कराने का जिम्मा तसलीमा ने अपनी लेखनी के माध्यम से मजबूती से उठाना प्रारम्भ किया। इसके साथ ही लेखन में उनकी तटस्थता, सच्चाई और तथ्यान्वेषण उनको एक मजबूत लेखिका के तौर पर पूरी दुनिया में स्थापित करने का कार्य किया। उनका प्रमुख उपन्यास लज्जा (1992) है। यह उनके सामाजिक चिंतन की सर्वश्रेष्ठ अभिव्यक्ति है। 'लज्जा' मनुष्य के पक्ष में लिखा गया तथ्य आधारित उपन्यास है जो भारत में 1992 के बाबरी मस्जिद विध्वंस के बाद उपजी हिन्दू–मुस्लिम दंगों की विभीषिका को चित्रित करता है। यह एक प्रगतिवादी, शिक्षित परिवार की कहानी है जो साम्प्रदायिक उन्माद का शिकार होकर एक कुंठित समाज का एक अंग बनकर खुद साम्प्रदायिक हो जाता है। 'लज्जा' में व्यक्त अपने चिंतन को स्पष्ट करते हुए तसलीमा जी ने लिखा है– ''दिसम्बर के साम्प्रदायिक दंगे, मैंने अपनी आँखों से देखे हैं। इंसानियत से मजहब

जब अहम् हो उठा, तभी मैंने प्रतिवाद की जिम्मेदारी महसूस की। 'लज्जा' लिखने से भी बहुत पहले मैं इन सबका विरोध करती रही हूँ। 'लज्जा' धार्मिक साम्प्रदायिकता और दंगों के खिलाफ तीखा प्रतिवादी है।''[7]

निष्कर्षतः यह बात स्पष्ट है कि साहित्य संसार में प्रसिद्ध लेखिकाओं का उद्‌भव का आधार समाज की विषमता, शोषण एवं उसके खिलाफ उनकी प्रतिरोधात्मक स्वर रहा। इसके साथ ही महाश्वेता देवी, अमृता प्रीतम एवं तसलीमा जैसी लेखिकाओं ने एक तरफ स्वतंत्रता, समानता, बंधुत्व एवं गरिमापूर्ण जीवन के ख्यालातों को न केवल स्थापित करने का प्रयास किया बल्कि साथ ही साथ समकालीन घटनाओं एवं विभीषिकाओं का तथ्यात्मक सात्विक निरपेक्ष वर्णन कर उनसे उपजे विषादों एवं मानव मन–मस्तिष्क का खासतौर से नारी चेतना की दृष्टि से उसके समाधान का भी मार्ग प्रशस्त करने का मुख्य सामाजिक दायित्व बोध से भी परिपूर्ण करने का कार्य किया।

संदर्भ :

1. मंगलेश डबराल– हंस, जून 2005, पृ0 86 से उद्‌धृत।
2. नरेन्द्र बहादुर सिंह– मनोरमा, फरवरी, 1997 से उद्‌धृत।
3. महाश्वेता देवी– 'जंगल के दावेदार', भूमिका से उद्‌धृत, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2001।
4. महाश्वेता देवी– जली थी अग्निशिखा (दो शब्द से उद्‌धृत), राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली संस्करण 2001।
5. अमृता प्रीतम– पिंजर, पृ0 6–8 (कुछ सतरां), राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2017।
6. अमृता प्रीतम– साप्ताहिक हिन्दुस्तान, 17 जून 1984, पृ0 27 से उद्‌धृत्।
7. द्विखण्डित– तसलीमा नसरीन, पृ0 399, वाराणसी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2004।

◂◂ ▸▸

अरविन्द घोष के राजनैतिक विचार : राजनीति में सांस्कृतिक हस्तक्षेप

दिलीप कुमार मिश्रा*

यदि हम अपने देश, धर्म और संस्कृति तथा स्वयं अपने आपको समझना है तो हमें अपने राष्ट्र के इतिहास का स्वयं अध्ययन करना होगा। अपने देश के इतिहास की जानकारी के बिना हम राष्ट्र की, राष्ट्र के आदर्शो को और राष्ट्र के प्रति अपने कर्त्तव्यों को समझ नहीं सकते। इतिहास की इस अनभिज्ञता की स्थिति में हम अपने राष्ट्र के प्रति प्रेम और कर्त्तव्य परायणता व निष्ठ भी पैदा नहीं हो सकती। अतः राष्ट्र के वास्तविक स्वरूप का साक्षात्कार करने और राष्ट्र के प्रति अपने से उत्सर्ग पूर्ण–स्नेह व कर्त्तव्य निष्ठा उत्पन्न करने को हमारे लिए इतिहास का उसकी सम्पूर्णता में अध्ययन और मनन कराना अति आवश्यक हो जाता है।

इतिहास को सम्पूर्णता में अध्ययन करने का अर्थ है कि हमें किसी देश काल परिस्थिति के राजनैतिक इतिहास के साथ–साथ उसके धार्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक संस्थाओं व विचारों का भी अध्ययन करना चाहिए। उदाहरण के तौर पर हम देखते है कि अरविन्द घोष की राजनैतिक गतिविधियों के समय कैसे भारत में औपनिवेशिक शासन व्यवस्था पाश्चात्य तरीके से संचालित होने के कारण पाश्चात्य संस्कृति का प्रसरण भारतीय समाज में बहुत तेजी से हो रहा था। यही नहीं औपनिवेशिक सत्ता राजनीतिक रूप से भारत की पहचान राजनैतिक–आर्थिक, सामाजिक रूप से पिछड़े समाज की बनाने पर जोर दे रही थी। इस राजनीतिक, सामाजिक व सांस्कृतिक द्वन्द्व के दौरान भारत में बड़ौदा राज्य के गायकवाड़ के शासन में विभिन्न पदो पर रहते हुए अरविन्द घोष ने भारतीय दर्शन का अध्ययन किया और मई 1908 तक दैनिक 'वन्दे मातरम्' पत्रिका के माध्यम से राष्ट्रीय आंदोलन में योगदान दिया। वे भारत के प्रथम ऐसे राजनेता थे जिन्होंने सार्वजनिक रूप से घोषणा की कि भारत में राजनैतिक गतिविधियों का मुख्य उद्देश्य स्वराज प्राप्त करना है। जिसका उल्लेख बार–बार अपनी पत्रिका के माध्यम से करते रहे है। अरविन्द घोष आधुनिक भारत के ऐसे राजनीतिक विचारक थे जिन्हें भारतीय राष्ट्रवाद का महान् उन्नायक कहा जाता है। उन्होंने याचिका और प्रार्थना–पत्रों के माध्यम से स्वतंत्रता की मांग करने वाली उदारवादियों को कमजोर कहते हुए कड़ी आलोचना की। अरविन्द घोष निरन्तर भारतीय जनता के स्वजागरण का कार्य भारतीय संस्कृति, अध्यात्म और अपने विचारों के माध्यम से करते रहे।

साहित्य और राजनीति के साथ ही साथ अध्यात्म में भी अरविन्द घोष की रूचि निरन्तर बढ़ती रही। उनका कहना था ''अस्तु मनुष्य को सबसे पहले नैतिक, सुकृति बनना है और तब केवल नैतिक जीवन के नियम से ऊपर उठकर अध्यात्मिक प्रकृति के प्रकाश, विशालता और शक्ति की ऊँचाईयों की ओर उठाना है, जहाँ कि वह द्वैत और भ्रांति, द्वन्द्व–मोह के परे पहुँच जाता है।''[1]

प्रारम्भ में अरविन्द की इच्छा थी कि वे ब्रिटिश हुकूमत के विरूद्ध चल रहे राजनीतिक संघर्ष में भाग लें और भारत को स्वतंत्र कराने में लगी शक्तियों और संगठनों को मजबूत करने में योगदान दें। इसके लिए उन्होंने स्वतंत्रता आन्दोलन में भाग लेने वाले प्रमुख नेताओं से गुप्त वार्ता और पत्र–व्यवहार करना प्रारम्भ कर दिया था। जब वे बड़ौदा–राज्य में कार्य करते थे, तब कभी–कभी अपने नाना जी से मुलाकात करने बंगाल जाया करते थे। उनकी यात्रायों का उद्देश्य क्रांतिकारी केन्द्रों को देखना और दूसरे जिलों के प्रमुख व्यक्तियों से मिलना तथा देश की सामान्य मनोवृत्ति के साथ क्रांतिकारी आन्दोलन की संभावनाओं का ज्ञान प्राप्त करना था। अरविन्द को अपनी इन यात्राओं से आभास हो गया था कि गुप्त कार्य या तैयारी से अपने आपमें तब तक कोई निष्कर्ष नहीं निकलेगा जब तक कि इसके साथ जनता में एक व्यापक आन्दोलन न किया जाये, जो जनसाधारण में देश–प्रेम की उमंग पैदा कर दें और इस विचार को प्रचारित कर दे कि स्वराज ही भारतीय राजनीतिक आदर्श और उद्देश्य है।

अरविन्द ने राजनीतिक गतिविधियों के साथ ही साथ राजनीतिक विचारों के माध्यम से जनता के स्व को जगाने का कार्य किया। गाँधी जी की तरह अरविन्द ने भी नीति और राजनीतिक में समन्वय किया। इटालियन दार्शनिक मैकियावेली और उसके समर्थकों का मानना था कि राजनीति का नीति से कोई तालमेल नहीं है। जबकि हाब्स और बेन जैसे दार्शनिकों ने नीति को राजनीति के अधीन माना। प्लेटो, अरस्तू, हीगल

* असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, श्री गणेश राय पी.जी. कालेज, डोभी, जौनपुर

और गाँधी जी जैसे आदर्शवादी विचारकों ने राजनीति को नीति के अधीन करने का प्रयास किया। इन सबके विपरीत अरविन्द ने तो राजनीति को नीति के अधीन माना और न ही नीति को राजनीति के अधीन माना। बल्कि इन दोनों को ही आध्यात्मिक परम्तत्व पर आधारित किया, जो कि मानव की समस्त क्रियाओं के साथ–साथ इन दोनों का भी नियमन करता रहें। यही कारण है कि अरविन्द के अनुसार निष्क्रिय प्रतिरोध और गाँधी के सत्याग्रह में अन्तर नहीं था। गाँधी मानते थे कि शान्तिपूर्ण प्रतिरोध अन्य विधियों के मुकाबले साहसपूर्ण और आक्रामक नहीं है। क्योंकि जिस तरह से प्रकृति की मूल प्रवृति होती है और उसका विकास का परम्तत्व स्वभाव है जिसे हम अपने नैतिक आचरण के माध्यक से आत्मा का विकास करते है, इसलिए किसी नैतिक आचरण के विकास के कारण बाह्य कारको से नहीं होता है बल्कि आन्तरिक विकास के माध्यम से होता है। अरविन्द कहते है कि सभी कर्म सापेक्ष होता है और किसी भी कर्म का औचित्य, शुद्धता और श्रेष्ठता उसके बाहरी परिणाम से आंकलन नहीं कर सकते, और उसका वास्तविक मूल्य उसके अभिप्राय से भी नहीं किया जा सकता बल्कि उस सहायता से जाना जा सकता है जो कि वह आध्यात्मिक विकास में देता है। यह आध्यात्मिक विकास ही परम् साध्य है। यही नैतिक प्रवृति और नैतिक आचार की चरम गणना अथवा सामाजिक नियमों के अनुरूपता के साथ अनुमान नहीं लगाया जा सकता है।

अरविन्द अपने समकालिन क्रांतिकारियों और विचाराकों में एक अग्रगामी राष्ट्रवादी विचारक थे। भारत ही नहीं विश्व के देशों में भी भिन्न–भिन्न विचारकों ने अनेक प्रकार के राष्ट्रवाद के विचार दिये। उनमें से कुछ लोग देश के भौतिक विकास को ही राष्ट्रीय विकास मानते रहे है, क्योंकि वे साम्राज्यवाद तथा उपनिवेशवाद के माध्यम से अन्य देशों के राष्ट्रीयता को परिभाषित करते रहे है। उनके अनुसार भारत में राष्ट्रवाद पश्चिम के विचारधारा से प्रभावित था। जैसाकि रवीन्द्र नाथ टैगोर के राष्ट्रीयता के विचार में देखा जा सकता है। रवीन्द्र नाथ टैगोर राष्ट्रवाद की अपेक्षा अन्तर्राष्ट्रीयतावाद को ज्यादा महत्व देते है। जबकि अरविन्द और रविन्द्र नाथ टैगोर दोनों ही राष्ट्रवादी थे और दोनों ने ही राष्ट्रीय 'अहंकार' का खण्डन करते हुए विश्व एकता का समर्थन किया है, अरविन्द विश्व शांति की जगह पर मानव एकता को महत्व देते हैं वे आध्यात्मिक राष्ट्रवाद की धारणा पर बल देते हुए राष्ट्र के सर्वांग विकास का आधार प्रस्तुत करते है, जिस पर चलकर विभिन्न राष्ट्र अपनी प्रगति कर सकें और मानवता का पूर्ण विकास कर सके। वे आध्यात्मिक राष्ट्रवाद को स्पष्ट करते हुए कहते है कि वह प्रत्येक मानव समाज, राष्ट्र, जाति अथवा किसी भी अन्य सुगठित समुदाय को इसी दृष्टि से देखेगा, यह भी कहा जा सकता है कि वह उन्हें अपआत्माएँ समझेगा, उन्हें 'परम् आत्मा' की दिव्य सद्वस्तु की तथा पृथ्वी पर मनुष्य के अन्दर के चेतन असीम की जटिल अभिव्यक्ति और स्वपरिपूर्णता का साधन समझेगा। आध्यात्मिक राष्ट्रवाद में व्यक्ति का दमन राज्य नहीं करेगा और राज्य का दमन उपनिवेशवाद नहीं कर सकता है। सनातन धर्म को राष्ट्रीयता का आधार बताते हुए अपने भाषण में अरविन्द घोष कहते है, ''जब आप बाहर जायें, तो अपने राष्ट्र से हमेशा यह शब्द बोले कि वे सनातन धर्म के लिए पैदा हुए है, यह अपने लिए ही नहीं है, बल्कि दुनिया के लिए भी है। मैं उन्हें दुनिया की सेवा के लिए आजादी दे रहा हूँ। इसलिए जब यह कहा जाता है कि भारत उठेगा, तो सनात धर्म उठेगा। जब यह कहा जाता है कि भारत का विस्तार और विस्तार होगा, यह सनातन धर्म ही है जो दुनिया भर में विस्तार और विस्तार करेगा। धर्म के लिए और धर्म से ही भारत का अस्तित्व है।''[2] वह आगे सनातन धर्म के बारे में कहते है ''यह केवल वह शब्द है जो मुझमें डाला गया है कि मैं आपसे बात कर सकता हूँ। वह शब्द अब समाप्त हो गया है। मैं एक बार पहले से भी अपने अन्दर इस ताकत के साथ बोला था और तब मैंने कहा था कि यह आंदोलन कोई राजनीतिक आंदोलन नहीं है और यह कि राष्ट्रवाद राजनीति नहीं बल्कि एक धर्म, एक पंथ, एक आस्था है, मैं कहता हूँ कि यह सनातन धर्म है जो हमारे लिए राष्ट्रवाद है। यह हिन्दू राष्ट्र सनातन धर्म के साथ पैदा हुआ था, इसके साथ चलता है और इसके साथ बढ़ता है। जब सनातन धर्म का पतन होता है , तब राष्ट्र का पतन होता है और यदि सनातन धर्म नष्ट हो जाता है, तो सनातन धर्म के साथ यह नष्ट हो जायेगा। सनातन धर्म ही राष्ट्रवाद है।''[3]

इस तरह से अरविन्द घोष ने राष्ट्रवाद को धर्म से जोड़कर आध्यात्मिक राष्ट्रवाद के माध्यम से मानवतावाद की भी बात करते है। वह कहते है कि यह राष्ट्रवाद की भावना है जिसे हम मानते है और उसका पालन करते हैहम मानवता से कहते है, ''वह समय आ गया है जब आपको एक महान् कदम उठाना चाहिए और भौतिक अस्तित्व से उच्च, गहरे और व्यापक जीवन में उठना होगा, जिसकी ओर मानवता चलती है। जिन समस्याओं ने मानव जाति को परेशान किया है, उन्हे केवल भीतर के राज्य पर विजय प्राप्त करके हल किया जा सकता है, न कि आराम और विलासिता की सेवा के लिए प्रकृति की शक्तियों का उपयोग

करके, बल्कि बुद्धि और आत्मा की शक्तियों में महारत् हासिल करके, मनुष्य की स्वतंत्रता को साबित करके हल किया जा सकता है। इस कार्य के लिए एशिया पुनरूत्थान आवश्यक है, इसके लिए भारत की स्वतंत्रता और महानता आवश्यक है, जिससे कि वह अपनी नीयत स्वतंत्रता और मानवता का दावा करती है और यह पूरी मानवता के हित में है।[4]

अरविन्द भारतीय संस्कृति को महत्व देते हुए कहते है कि अध्यात्म भारत की एकमात्र राजनीति है, सनातन धर्म की पूर्ति ही स्वराज है। मुझे इसमें सन्देह नहीं है कि पश्चिमी लोकतंत्र की धारणा से छुटकारा पाने के लिए हमें अपने संसदीय काल से गुजरना होगा, यह देखकर की राष्ट्रों को धन्य बनाना कितना असहाय है। वर्तमान परिस्थिति में, आज भी हम सांस्कृतिक रूप से स्वतंत्र नहीं है। जब भी भारतीय संस्कृति की बात होती है तो उसे एक धर्म विशेष लोगों से जोड़ दिया जाता है। जैसा कि अरविन्द के आध्यात्मिक राष्ट्रवाद के सिद्धांत के संदर्भ में यह तर्क दिया जाता है कि आध्यात्मिक राष्ट्रवाद वास्तव में धार्मिक था और यही कारण था इसका चरित्र प्रतिक्रियावादी था। यह गरीबी, आर्थिक शोषण और समानता जैसे मुद्दों पर आमजन को भावनात्मक रूप से जागृत करना नही था बल्कि उन मुद्दों से ध्यान हटाने का प्रयास था, जो व्यक्ति और समुदाय दोनों की प्रगति के लिए हानिकारक थी। यह एक तरह से देश की सांस्कृतिक विरासत के शेष हिन्दुओं की धार्मिक भावनाओं की दुहाई थी। इसके आलावा यह भी तर्क दिया जाता है कि राष्ट्रवाद को आध्यात्मिकपूर्णताका साधन मानना आमजन को आवश्यकता से अधिक आदर्शवादी और काल्पनिकता की ओर ले जाने का प्रयास था। इसके साथ ही साथ यह भी तर्क दिया जाता है कि धर्म को राजनीति से जोड़कर देखना भी एक तरह से भारत जैसे बहुधर्मीय देश के लिए ठीक नहीं है। अगर ऐसा होता है तो बहुसांस्कृतिक, बहुसंख्यक समाज के लिए विशेषकर गंगा–जमुनी संस्कृति के लिए घातक होगा और एक धर्मविशेष को अलग–थलग करना होगा। लेकिन यह तर्क देना ठीक नहीं है। अरविन्द ने मानव एकता और राष्ट्रवाद की अवधारणा का आधार हिन्दू सनातन धर्म को माना था। वह कहते है कि पृथ्वी हमारी मातृभूमि है। यह न तो वाणी है और न ही मन की कल्पना है। यह वह शक्ति है जो राष्ट्र लाखों इकाइयों से मिलकर बनी हुई है। जैसे भवानी, महिषा मर्दिनी सभी लाखों देवताओं की शक्तियों से मिलकर उत्पन्न हुई, जो एक बल के समूह में एकत्रित हुई और एकता के सूत्र से जोड़ी हुई है।

अरविन्द घोष समाचार पत्र बन्दे मातरम् में लिखते है कि बंकिम की अपने राष्ट्र के लिए प्रमुख सेवा यह थी कि उन्होनें हमे हमारी माता का दर्शन करा दिया। मातृभूमि का खुला बौद्धिक विचार अपने आप में एक महान् प्रेरक शक्ति ही नहीं है, और न ही स्वतंत्रता की वांछनीया की मान्यता एक प्रेरक मकसद बन सकती है। वर्तमान में बहुत कम भारतीय है, चाहे वे अपने राजनीतिक विचारों में वफादार, उदारवादी या राष्ट्रवादी हो, जो यह नहीं मानते कि देश का दावा है कि अमूर्त में स्वतंत्रता वांछनीय वस्तु है। लेकिन हममें से अधिकांश जब देश के दावों और अन्य दावोंके बीच एक सवाल होता है, तो देश की सेवा को प्राथमिकता नहीं देते है और जबकि कई में स्वतंत्रता को पूरा होते पूरा होने की इच्छा हो सकती है। कुछ में इसे पूरा करने की इच्छा है। यहाँ अन्य चींजे है जिन्हें हम अधिक प्रिय मानते है और जिन्हें हम स्वतंत्रता के संघर्ष में या उसकी उपलब्धि से खतरे में खतरे में देखने से डरते है। यह तब तक नहीं है जब तक मातृभूमि मन की आंखों के सामने खुद को पृथ्वी के एक हिस्से या व्यक्तियों के एक समूह के रूप में प्रकट नहीं करती है, यह तब तक नहीं है जब तक कि वह सुन्दरता के रूप में एक महान् दिव्य और मातृ शक्ति के रूप में आकार नहीं लेती है। मन को वश में कर सकता है और ह्रदय पर कब्जा कर सकता है कि माता और उसकी सेवा के लिए सर्वव्यापी जुनून में यह क्षुद्रभय और आशाएँ गायब हो जाती है, और देश भक्ति जो चमत्कार करती है जिससे कि एक बरबाद राष्ट्र को बचाती है।

अरविन्द घोष राष्ट्रवादी होने के बावजूद भी वह स्वीकार करते है कि राष्ट्रों के विकास के साथ मानव एकता का आदर्श भी होना चाहिए क्योंकि एक राष्ट्र का लक्ष्य मानव विकास ही होता है। जबकि इस लक्ष्य को प्राप्त करने में समस्याएं निरन्तर आती रहती है। जैसाकि प्राचीन काल में पूर्व और पश्चिम में सब जगह छोटे–छोटे राज्य होते थे और जिनमें आन्तरिक एकता तो मूल तत्वों को सन्दर्भित करते हुए कहते हैं–''राष्ट्रीयता एक सामान्य, रूचि, समान्य विचार एक मनोवैाज्ञानिक एकता पर आधारित होती है जोकि राष्ट्रीयता के विचार में अभिव्यक्त होता है।''[6] साथ ही साथ मानव एकता का विकास करने का भी लक्ष्य होना चाहिए।

मानव एकता के आदर्श में अरविन्द घोष की आस्था होने के कारण राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और शिक्षा सम्बन्धी, जीवन के सभी क्षेत्रों में एकरूपता प्राप्त करने पर सदैव जोर देते रहे है। वह कहते हैं–

''मानवजाति का राजनीतिक और प्रशासनीय एकीकरण केवल सम्भव ही नहीं है, वरन् हमारा वर्तमान विकास इसकी ओर इंगित भी कर रहा है।''[7]

इसके अतिरिक्त, वह स्वतंत्रता और विभिननता के सिद्धांत पर भी उतना ही बल देते हैं। वह मानते है कि परम् तत्व में एकता और अनेकता दोनों ही हैं। प्रकृति की सामान्य योजना असीम विविधता पर आधारित होती है। इसलिए आदर्श समाज में वैयक्तिक, राष्ट्रीय, धार्मिक, सामाजिक और नैतिक सब प्रकार की स्वाधीनता आवश्यक है। स्वाधीनता के अर्थ को स्पष्ट करते हुए लिखते है, ''स्वाधीनता से हमारा अभिप्राय है अपनी सत्ता के नियम के अनुसार चलना, अपनी स्वाभाविक आत्मपरिपूर्णता तक विकसित होना और अपने वातावरण के साथ स्वाभाविक और स्वतंत्र रूप से समस्वरता प्राप्त करना।''[8] अरविन्द का मानना था कि मनुष्य अगर अपनी आध्यात्मिक और मनेवैज्ञानिक एकता प्राप्त भी कर लेता है तो फिर भी उसे अपने पूर्ण स्वतंत्र विकास के लिए स्वाधीनता आवश्यक है। यह तभी संभव होगा जब मानव जाति के आदर्श एकीकरण में मनुष्यों के जाति, संस्कृति और आर्थिक सुविधा के आधार पर समुदायों के निर्माण की स्वतंत्रता दी जायेगी।

अरविन्द व्यक्ति और समुदाय के सन्दर्भ में सम्पूर्ण विकास की बात करते हैं। वह कहते हैं कि प्रकृति के विकास में जब व्यक्ति समूह का निर्माण करते है और उनके बीच धीरे–धीरे शक्ति के केन्द्र–बिन्दु का निर्माण होता है। अगर सही शक्ति केन्द्र–बिन्दु शक्तिशाली नहीं हो पाता है तो बाकि लोगों के प्रभाव में क्रमशः समाप्त हो जाता है। इसी तरह मानव–समाज निम्न स्तर से उठकर बौद्धिकता के स्तर पर क्रमशः आता है और यही प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है। अरविन्द ने मानव–समाज के विकास चरण का मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विश्लेषण किया है। उनका मानना है कि समाज का विकास मानवों का ही सामूहिक विकास है और मानव का विकास मनोवैज्ञानिक विकास है, क्योंकि बुद्धि नये विचारों, आवश्यकताओं और संभावनाओं के प्रति तुरन्त प्रतिक्रिया करती है इसलिए आधुनिक समाजों में तीव्रगामी आन्दोलन दिखलाई पड़ते है। इस बौद्धिकता का प्रारंभ व्यक्तिवाद से हुआ है। जो रूढ़िवाद के विरूद्ध विद्रोह के रूप में प्रकट हुआ। व्यक्तिवाद को परिभाषित करते हुए अरविन्द कहते हैं कि समाज में व्यक्तिगत मानव की क्रिया और बुद्धि का एक क्षेत्र मात्र है और अपने कार्य को तभी सर्वोत्तम रूप से पूरा करता है जबकि वह जहाँ तक संभव हो व्यक्ति के विचार, उसकी क्रिया, उनकी वृद्धि, सत्य की पूर्णता उसकी सम्भावना के लिए पर्याप्त स्थान, पर्याप्त साधन, आवश्यक स्वतंत्रता और निर्देशन देता है।[9] अरविन्द का मानना है कि स्वतंत्र इच्छा की धारणा मनुष्य को व्यक्तिवादी अहंकार में हमेशा प्रभावित होती है। वह इस सन्दर्भ में कहते है, ''हमारी स्वतंत्र इच्छा की धारणा मानवीय अहंकार के तिशय व्यक्तिवाद से दूषित होने की ओर झुकी रहती और एक ऐसी स्वतंत्र इच्छा का आकार लेना चाहती है जो अपने ही अलग हिसाब से, अपने ही चुनाव और एकांकी पृथक गतिधारा के अतिरिक्त किसी अन्य निर्धरण के बिना पूरी स्वतंत्रता से कार्य करती हो। इस भाव में इस तथ्य की अवज्ञा है कि हमारी प्राकृत सत्ता विश्व–प्रकृति का अंग है और हमारी आध्यात्मिक सत्ता का अस्तित्व केवल परम् विश्वतीत के सहारे है।''[10]

अरविन्द घोष जब राज्य की आत करते है तो वह कहते है, 'राज्य सिद्धांत, यह संगठित समाज का विचार है जिसके लिए व्यक्ति की बलि देनी होगी, है क्या ? आदर्श रूप में यह व्यक्ति से इस बात की मांग करता है कि वह अपने आपकों सर्वहित के अधीन कर दें। अर्थात् वह सामूहिक अहंकार के अधीन हो जाता है जिस अहंकार का स्वरूप राजीनीतिक सैनिक तथा आर्थिक होता है।'[11] उनके कहने का तात्पर्य यह था कि यह सामूहीकरण समाज में सामूहिक उद्देश्यों और महत्वाकांक्षाओं को पूरा करने का प्रयास करेगा जैसा कि सत्ता के आकांक्षी छोट–बड़े दल जो किसी रूप में समाज के प्रतिनिधि माने जाते हैं। अरविन्द के राज्य सिद्धांत का दूसरा रूप राज्य की संगठित मशीन का यह अधिकार और व्यापक मानव विकास का सर्वोत्तम साधन है, क्योंकि मनुष्य समाज पर निर्भर करता है, उसे अपने व्यक्तिगत तथा सामूहिक उन्नति करने के लिए भी राज्य की आवश्यकता पड़ती है। अरविन्द मानते है कि मानव सहयोग कि संभावनाओं से इनकार की सम्बन्ध अंग्रेजी व्यक्तिवाद की दुर्बलता थी, सम्मिलित कार्यबद्ध उपयोगिता के बहाने राज्य द्वारा कठोर नियंत्रण स्थापित करना समूहवाद के ट्यूटोनिक विचार की कमजोरी है।[12]

व्यक्तिवाद को आधुनिक लोकतंत्र में महत्वपूर्ण जगह दिया जाता है। जनतंत्रिय विचारधारा के अनुसार सरकार का निर्णय और समाज की व्यवस्था करने के लिए प्रत्येक व्यक्ति में समान बुद्धि और संकल्प पाये जाते है। वह यह समाज है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को अन्य के सामने माने जाने का अवसर मिलता है और व्यक्तिववादी बुद्धिवाद व्यक्तिवादी जनतंत्र के आदर्श तक पहुँचता है। जैसाकि व्यक्तिवाद विवेक समानता का समर्थन करता है। अरविन्द घोष ने प्रतिनिधि लोकतंत्र की आलोचना की है, उनका मानना था कि इसमें

जनता के शासन के नाम पर कुछ कुलीन व धनी व्यक्तियों का ही शासन होता है तथा यहाँ जनता को राजनीतिक व आर्थिक अधिकार तो प्राप्त होते हैं परन्तु व्यक्गित अधिकार प्राप्त नहीं होते है।

अरविन्द भारत की तत्कालीन राजनीति पर पाश्चात्य राजनीतिक विचारधारा के प्रभाव पर टिप्पणी करते हुए कहते है, ''भारत के राजनीतिक अक्षमता की काहनी उसकी ऐतिहासिक विकास धारा को गलत दृष्टि से देखने और उसके प्रीचनकाल के ऐतिहासिक अज्ञानता के कारण उद्भूत हुई है।'' वह आगे कहते है–'यह धारणा बहुत समय तक प्रचलित रही है कि वह एक अधिक स्वतंत्र प्रकार की आदिम आर्य या वैदिक समाज व्यवस्था और राष्ट्र व्यवस्था में एक ऐसी व्यवस्था में जा पहुँचा जिस पर सामाजिक रूप में एकदम ही ब्राह्मणों के धर्म शासन की स्वेच्छाचारिता की छाप थी और राजनीतिक रूप में पूर्वीय अर्थात् पश्चिम–एशियाई ढ़ंग के निरंकुश राजतंत्र की।''[13]

अरविन्द घोष ऐसे क्रांतिकारी राजनेता भी थे जिन्होंने सार्वाजनिक रूप से ऐसी घोषणा करने का साहस किया और इसमें इन्हें तत्काल सफलता मिली। नेशनलिस्ट पार्टी के 'स्वराज' शब्द को लेकर स्वतंत्रता के आदर्श को व्यक्त करने के लिए उसका उपयोग किया और शीघ्र ही वह सर्वत्र प्रचलित हो गया। कांग्रेस द्वारा संचालित आंदोलन में सभी वर्गो, समुदाय की भागीदारी और उदारवादी नीतियों को लेकर आलोचना करते हुए अरविन्द कहते है– कांग्रेसी आंदोलन की वास्तविक नीति प्रारंभ से ही होनी चाहिए थी कि अपने झण्डे के नीये इस विशाल देश में विद्यमान शक्ति के सभी तत्वों को एकत्र करना। ब्राह्मण पण्डित और मुस्लिम मौलवी, जातीय संगठन और ट्रेड यूनियन, मजदूर और कारीगर, कुली अपने काम पर और किसान अपने खेत में, इनमें से किसी को भी अपनी गतिविधियों के क्षेत्र के बाहर नहीं छोड़ना चाहिए था। क्योंकि प्रत्येक एक शक्ति है, बल की इकाई है और राजनीति में विजय उसके पक्ष में होती है जो ऐसी इकाईयों की सबसे बड़ीं संख्या और उन्हें सबसे अधिक सघन रूप से सटा कर व्यवस्थित कर सके और उत्यधिक कुशलता के साथ उनका उपयेाग कर सके। लेकिन कांग्रेस ने तो राजनीति के बिल्कुल बुनियादी तत्वों के सम्बन्ध में गलत धारणाओं के साथ और अपनी नजरें ब्रिटिश सरकार की तरफ और सर्वसाधारण से परे रखकर प्रारंभ से ही शुरूआत की।'[14]

1905 में वायसराय कर्जन ने फूट डालो–शासन करो की नीति के तहत् मुस्लिम बहुल प्रान्त के लिए बंगाल को दो भागों में बांट दिया था। जिसके कारण बंगाल में राजनीतिक अशांति फैल गयी। कांग्रेस ने बंगाल विभाजन के विरूद्ध आंदोलन को प्रारंभ किया। बंगाल विभाजन का विरोध करने का प्रमुख कारण बंगला भाषी जाति की राजनैतिक शक्ति पर एक गंभीर आघात करना था क्योंकि उस दौरान बंगाल आंदोलन को केन्द्र–बिन्दु बन गया था। जिसका जिक्र करते हुए अरविन्द कहते है, 'ब्रिटिश सरकार एक मुस्लिम प्रांत बनाने का दम भरना चाह रही थी। जिसकी राजधानी ढ़ाका हो और जिसका स्पष्ट उद्देश्य था एक ऐसे प्रांत में हिन्दुओं और मुस्लमानों के बीच वैमनस्य के बीज बोना था।' बंगाल विभाजन राष्ट्रीय आंदोलन में एक नयी उर्जा का संचार कर दिया था। अरविन्द आगे कहते है 'यह आंदोलन केवल विभाजन के विरूद्ध अथवा सरकार की किसी विशेष कार्यवाही के विरूद्ध आंदोलन था।... संपूर्ण राष्ट्रीय स्वायतता की प्राप्ति ही इस आंदोलन को शांत कर सकती है! वह यह भी कहते है कि आम जनता की धारणा थी कि सरकार इस आंदोलन को दबाने के लिए मुस्लमानी हुल्लड़बाजी को आधार बनाने की कोशिश कर सकती है। जोकि अनर्गल है और जो इस धारणा को पोषित करते हैं वे यह भूल जाते है कि धौंस जमाने वाले पुरूषों में न तो सबसे अधिक शक्तिशाली होता है और नही सबसे अधिक वीर और यह इसलिए क्योंकि हिन्दू का आत्मसंयम, जिसे गलती से कायरता कहा गया, उसके राष्ट्रीय चरित्र का प्रमुख रहा है, और जब भी कोई पावन परिस्थिति इसकी मांग करती है, वह सीधे वार करने में तथा कठोर आघात करने में बिल्कुल असमर्थ रहता है।[15]

चर्चित अलीपुर बम मुकदमें में अरविन्द घोष जेल गये और जब जेल से बाहर आये तो उन्होंने पाया कि देश का पूरा राजनीतिक परिकथा बदला हुआ था। अधिकांश राष्ट्रवादी नेता जेल में थे या आत्म–निर्वासन में थे। हर ओर एक सामान्य निराशा और अवसाद था। हालांकि क्रांतिकारी आंदोलन को दमन करने में ब्रिटिश शासन असफल रही थी। अरविन्द घोष संघष जारी रखते हुए एक तरफ कलकत्ता में साप्ताहिक बैठकें प्रारंभ की जिसमें योग और अपने आध्यात्मिक अनुभवों के बारे में चर्चा करते रहते थे। वही दूसरी तरफ लेखनी के माध्यम से उन्होंने दो साप्ताहिक पत्रिका अंग्रेजी और बंगाली में, कर्मयोगिन और धर्म स्थापित करके क्रांति में नयी चेतना लाने की कोशिश की। जिसका प्रभाव राष्ट्रीय आंदोलन पर पड़ा। जेल से निकलने के

बाद जैसे वह अपना भविष्य तय कर चुके थे। समय के साथ वह आध्यात्म में वह रमते चले गये। उनका विश्वास था, कि एक दिन भारत की आध्यात्मिक शक्ति ही एक दिन भारत को स्वत्रंत्र करायेगी।

सन्दर्भ –

1. अरविन्द, 'एस्सेऑन द गीता', सेकेण्डसीरीज, आर्य पब्लिशिंग हाउस, कलकत्ता, पृ.सं. 24।
2. अरविन्द कर्मयोगी, (उत्तरपाडा भाषण, 1990–10), पोलिटिकल राटिंग्स एण्ड स्पीचेस, वाल्यूम 8, द कम्पलीट वर्क ऑफ श्री अरविन्दो आश्रम पब्लिकेशन, डिपार्टमेंट, पाण्डिचेरी, पृ.सं. 10।
3. उपरोक्त, पृ.सं. 12।
4. द आइडिया ऑफ द कमयोगी, 19 जून, 1909, पोलिटिकल राइटिंग्स एण्ड स्पीचेस, बाल्यूम 8, द कम्पलीट वर्क ऑफ श्री अरविन्दो आश्रम पब्लिकेशन, डिपार्टमेंट, पाण्डिचेरी, पृ.सं. 27।
5. ऋषि बैंकिमचन्द्र, श्री अरविन्द–हीज़ राइटिंग, 'अरली कल्चरल राइटिंग' वाल्यूम–1, अरविन्द आश्रम प्रकाशन विभाग, पाण्डिचेरी, पृ.सं. 6401
6. अरविन्द घोष, मानव एकता का आदर्श, श्री अरविन्द सोसाइटी, पाण्डिचेरी, 1969, पृ.सं. 54।,
7. अरविन्द घोष, मानव एकता का आदर्श, श्री अरविन्द सोसाइटी, पाण्डिचेरी, 1969, पृ.सं. 135।,
8. अरविन्द घोष, मानव एकता का आदर्श, श्री अरविन्द सोसाइटी, पाण्डिचेरी, 1969, पृ.सं. 158।,
9. डॉ. योगेन्द्रकुमार शर्मा, 'श्री अरविन्द क्रांतिकारी राजनीतिक विचारक', कनिष्का पब्लिशर्स, डिस्ट्रीव्यूटर्स, नई दिल्ली, पृ.सं. 41।
10. अरविन्द, 'दिव्य जीवन' (अनुवादक–श्याम सुन्दर झुनझुनवाला) भारत सरकार शिक्षा–मंत्रालय की मानक ग्रन्थों की प्रकाशन–योजना के अन्तर्गत प्रकाशित, अरविन्द सोसाइटी पाण्डिचेरी–2, पृ.सं. 354।
11. अरविन्द, 'मानव एकता आदर्श, युद्ध और आत्म–निर्णय' अरविन्द–साहित्य खण्ड–5, (अनुवादक–श्याम सुन्दर झुनझुनवाला) भारत सरकार शिक्षा–मंत्रालय की मानक ग्रन्थों की प्रकाशन–योजना के अन्तर्गत प्रकाशित, अरविन्द सोसाइटी पाण्डिचेरी–2, पृ.सं. 20–21।
12. अरविन्द, 'मानव एकता आदर्श, युद्ध और आत्म–निर्णय' अरविन्द–साहित्य खण्ड–5, (अनुवादक–श्याम सुन्दर झुनझुनवाला) भारत सरकार शिक्षा–मंत्रालय की मानक ग्रन्थों की प्रकाशन–योजना के अन्तर्गत प्रकाशित, अरविन्द सोसाइटी पाण्डिचेरी–2, पृ.सं. 231
13. उपरोक्त, पृ.सं.–386।
14. 'वन्देमातरम् 'लेशन एट जमालपुर' कलकत्ता, 1 सितम्बर 1906, पोलिटिकल राइटिंग्स एंड स्पीच–1890–1908, द कम्पलीट वक्र्स ऑफ दी अरविन्दों बाल्यूम्–6, 7, श्री अरविन्दों आश्रम पब्लिकेशन, डिपार्टमेंट पाण्डिचेरी, पृ..– 141।
15. 'वन्देमातरम् 'लेशन एट जमालपुर' कलकत्ता, 4 सितम्बर 1906, पोलिटिकल राइटिंग्स एंड स्पीच–1890–1908, द कम्पलीट वक्र्स ऑफ दी अरविन्दों बाल्यूम्–6, 7, श्री अरविन्दों आश्रम पब्लिकेशन, डिपार्टमेंट पाण्डिचेरी, पृ..– 141।

बिहार की राजनीति में सामाजिक न्याय का विमर्श

Dr. Rajeev Kumar Ranjan*

सारांश

यह शोध पत्र बिहार की राजनीति में सामाजिक न्याय के विमर्श की व्यापक जांच करता है। स्वतंत्रता के बाद उच्च जातियों के प्रभुत्व से लेकर पिछड़े वर्ग के सशक्तिकरण तक की राजनीतिक यात्रा का विश्लेषण प्रस्तुत करता है। कर्पूरी ठाकुर, लालू प्रसाद यादव, राम विलास पासवान और नीतीश कुमार जैसे प्रमुख राजनीतिक नेताओं के माध्यम से यह अध्ययन बताता है कि किस प्रकार सामाजिक न्याय बिहार के राजनीतिक परिवर्तन का केंद्रीय विषय बन गया। यह शोध मंडल आयोग, जेपी आंदोलन और विभिन्न सामाजिक आंदोलनों के प्रभाव का अध्ययन करता है तथा वास्तविक सामाजिक न्याय की स्थापना में उपलब्धियों और चुनौतियों का आलोचनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

1. प्रस्तावना

बिहार एक उत्तर भारत का महत्वपूर्ण राज्य है जहाँ राजनीतिक चेतना ऐतिहासिक रूप से देखी जा सकती है। भारतीय गणतंत्र की शुरुआत बिहार से ही प्रारम्भ हुआ, जो दुनिया का प्रथम लोकतांत्रिक व्यवस्था का उदाहरण है।

बिहार जैसे बहुजातीय, बहुभाषिक और बहुधार्मिक समाज में लोकतंत्र तभी सार्थक हो सकता है जब समाज के सभी वर्गों को समान अवसर और सम्मान प्राप्त हो। इसी संदर्भ में "सामाजिक न्याय" की अवधारणा अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाती है।

सामाजिक न्याय का तात्पर्य केवल आर्थिक समानता से नहीं, बल्कि समाज के उन वंचित, पिछड़े, दलित, आदिवासी और अल्पसंख्यक समाज को राजनीतिक, सामाजिक तथा शैक्षिक अधिकार प्रदान करना भी है, जिन्हें लंबे समय तक सत्ता संरचना से बाहर रखा गया।

2. सामाजिक न्याय: अर्थ एवं अवधारणा

सामाजिक न्याय का अर्थ समाज में समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व की स्थापना से है। इसका उद्देश्य उन वर्गों को न्याय दिलाना है जो ऐतिहासिक रूप से शोषित और वंचित रहे हैं। भारतीय संदर्भ में सामाजिक न्याय का संबंध मुख्यतः जाति व्यवस्था, अस्पृश्यता, आर्थिक विषमता और शिक्षा में असमानता से जुड़ा रहा है।

डॉ० भीमराव अम्बेडकर ने सामाजिक न्याय को लोकतंत्र का आधार माना। संविधान में समानता का अधिकार, आरक्षण व्यवस्था, शिक्षा एवं रोजगार में अवसर की समानता जैसे प्रावधान इसी उद्देश्य से किए गए।

सामाजिक न्याय के प्रमुख तत्व:

1. सामाजिक समानता
2. राजनीतिक समानता
3. आर्थिक अवसरों की उपलब्धता
4. शिक्षा में समान अवसर
5. जातिगत भेदभाव का उन्मूलन
6. कमजोर वर्गों का सशक्तिकरण

* Assistant Professor, Dept. of Pol. Science, Malti Dhari College, Naubatpur, Patna (A Constitute Unit of Patliputra University, Patna)

3. बिहार की सामाजिक संरचना और राजनीति

बिहार की राजनीति को समझने के लिए उसकी सामाजिक संरचना को समझना आवश्यक है। बिहार में जाति सामाजिक संगठन का प्रमुख आधार रही है। यहाँ मुख्यतः निम्न सामाजिक समूह पाए जाते हैं:

- उच्च जातियाँ - ब्राह्मण, राजपूत, भूमिहार, कायस्थ
- पिछड़ा वर्ग - यादव, कुर्मी, कोइरी आदि
- अत्यंत पिछड़ा वर्ग (EBC) - तेली, बनिया, नाई, बढ़ई आदि
- अनुसूचित जातियाँ - दूसाध (पासवान), चमार (रविदास), मुसहर, पासी, डोम आदि
- मुस्लिम समुदाय - खान, अंसारी, शेख आदि

स्वतंत्रता के बाद लंबे समय तक बिहार की राजनीति पर स्वर्णजातियों का प्रभुत्व बना रहा। प्रशासन, शिक्षा और भूमि स्वामित्व में भी इन्हीं वर्गों का वर्चस्व था। ग्रामीण समाज में दलित और पिछड़े वर्ग सामाजिक एवं आर्थिक रूप से कमजोर थे।

4. स्वतंत्रता के बाद बिहार की राजनीति

स्वतंत्रता के बाद बिहार में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का प्रभुत्व था। उस समय राजनीति मुख्यतः उच्च जातीय नेतृत्व के हाथों में थी। हालांकि संविधान के माध्यम से लोकतांत्रिक अधिकार मिले फिर भी सामाजिक स्तर पर पिछड़े वर्गों को पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं मिल पाया।

1950 और 1960 के दशक में भूमि सुधार, जमींदारी उन्मूलन और पंचायत व्यवस्था में सुधार के प्रयास हुए लेकिन उनका लाभ सीमित रूप से ही गरीबों तक पहुँचा। इसी अवधि में समाजवादी आंदोलन ने बिहार में नई राजनीतिक चेतना पैदा की।

डॉ० राम मनोहर लोहिया ने "पिछड़ा पावे सौ में साठ" का नारा दिया। इस विचारधारा ने पिछड़े वर्गों में राजनीतिक जागरूकता बढ़ाई।

5. समाजवादी आंदोलन और पिछड़ा वर्ग राजनीति

5.1. कर्पूरी ठाकुर की भूमिका

कर्पूरी ठाकुर बिहार में सामाजिक न्याय के अग्रदूत माने जाते हैं। वे साधारण पृष्ठभूमि से आए थे और उन्होंने पिछड़े वर्गों के अधिकारों के लिए संघर्ष किया। मुख्यमंत्री बनने के बाद उन्होंने 1978 में पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण लागू किया। इसे "कर्पूरी ठाकुर फार्मूला" कहा गया।

इस नीति के तहत पिछड़े वर्गों को विभिन्न श्रेणियों में विभाजित कर आरक्षण प्रदान किया गया।

कर्पूरी ठाकुर की नीतियों का प्रभाव:

- पिछड़े वर्गों में राजनीतिक चेतना बढ़ी
- शिक्षा एवं नौकरियों में अवसर बढ़े
- उच्च जातीय प्रभुत्व को चुनौती मिली
- सामाजिक न्याय की राजनीति को वैचारिक आधार मिला

हालांकि सवर्ण जातियों ने इसका विरोध भी किया। इसके बावजूद कर्पूरी ठाकुर सामाजिक परिवर्तन के प्रतीक बन गए।

6. जेपी आंदोलन और मंडल आयोग

6.1. जेपी आंदोलन और राजनीतिक परिवर्तन

1970 के दशक में जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में बिहार में व्यापक जन आंदोलन हुआ। यह आंदोलन भ्रष्टाचार और तानाशाही के विरुद्ध था लेकिन इसने नई पीढ़ी के नेताओं को जन्म दिया। इसी आंदोलन से आगे चलकर कई प्रमुख नेता उभरे जैसे - लालू प्रसाद यादव, नीतीश कुमार, राम विलास पासवान।

6.2. मंडल आयोग और सामाजिक न्याय

1979 में भारत सरकार ने पिछड़े वर्गों की स्थिति का अध्ययन करने के लिए मंडल आयोग का गठन किया। आयोग ने सिफारिश की कि केन्द्र सरकार की नौकरियों में अन्य पिछड़ा वर्ग (OBC) को 27% आरक्षण दिया जाए।

1990 में प्रधानमंत्री विश्वनाथ प्रताप सिंह ने मंडल आयोग की सिफारिशों को लागू किया। इसका बिहार की राजनीति पर गहरा प्रभाव पड़ा। मंडल राजनीति का प्रभाव:

- पिछड़े वर्गों का राजनीतिक उभार
- जातीय पहचान राजनीति का प्रमुख आधार बनी
- उच्च जाति का प्रभुत्व कमजोर हुआ
- सामाजिक न्याय राजनीतिक विमर्श का केंद्र बन गया

7. लालू प्रसाद यादव और सामाजिक न्याय की राजनीति

7.1. राजनीतिक रणनीति

1990 के दशक में बिहार की राजनीति में सबसे बड़ा परिवर्तन लालू प्रसाद यादव के नेतृत्व में हुआ। लालू यादव ने स्वयं को गरीबों, पिछड़ों और मुसलमानों के नेता के रूप में प्रस्तुत किया। उनका प्रसिद्ध नारा था - "भूरा बाल साफ करो" यह नारा भूमिहार, राजपूत, ब्राह्मण और लाला (कायस्थ) जैसी उच्च जातियों के प्रभुत्व के विरुद्ध था।

7.2. उपलब्धियाँ और आलोचनाएं

लालू यादव की राजनीति का मुख्य आधार:

- पिछड़े वर्गों का सशक्तिकरण
- दलितों और मुसलमानों की सुरक्षा
- सवर्ण जातीय वर्चस्व का विरोध
- ग्रामीण गरीबों की राजनीति भागीदारी

आलोचनाएं:

- सड़क, शिक्षा, स्वास्थ्य और उद्योग के क्षेत्र में बिहार पिछड़ गया
- कानून व्यवस्था की स्थिति कमजोर हुई ("जंगलराज")
- राजनीति अत्यधिक जाति आधारित हो गई
- राजनीति में परिवारवाद बढ़ा

इन आलोचनाओं के बावजूद सामाजिक न्याय की राजनीति ने बिहार की सामाजिक संरचना को स्थायी रूप से बदल दिया।

8. नीतीश कुमार और सामाजिक न्याय के साथ विकास

8.1. नया प्रतिमान

2005 के बाद बिहार की राजनीति में नीतीश कुमार का उदय हुआ। उन्होंने सामाजिक न्याय की राजनीति को "विकास के साथ न्याय" की अवधारणा से जोड़ा।

नीतीश कुमार की प्रमुख नीतियाँ:

- अत्यंत पिछड़ा वर्ग (EBC) का सशक्तिकरण
- पंचायतों में महिलाओं को 50% आरक्षण
- साइकिल योजना, पोशाक योजना, और छात्रवृत्ति जैसी योजनाएं
- कानून व्यवस्था में सुधार

- पंचायत सशक्तिकरण
- स्थानीय स्तर पर लोकतंत्र को मजबूत किया गया

8.2. सामाजिक न्याय का नया स्वरूप

नीतीश कुमार ने सामाजिक न्याय को केवल जातीय प्रतिनिधित्व तक सीमित नहीं रखा बल्कि विकास, शिक्षा और प्रशासनिक सुधार से जोड़ा। इससे यह सिद्ध हुआ कि सामाजिक न्याय और विकास एक-दूसरे के विरोधी नहीं बल्कि पूरक हो सकते हैं।

9. चुनौतियाँ और भविष्य की दिशा

9.1. प्रमुख चुनौतियाँ

बिहार में सामाजिक न्याय की प्रमुख चुनौतियाँ निम्न हैं:

1. जातिवाद और सामाजिक विभाजन
2. आर्थिक असमानता
3. शिक्षा की निम्न गुणवत्ता
4. बेरोजगारी और पलायन
5. महिला सशक्तिकरण की सीमाएँ
6. भ्रष्टाचार और प्रशासनिक कमजोरी
7. दलितों और महादलितों की दयनीय स्थिति
8. सामाजिक न्याय का राजनीतिकरण
9. स्वास्थ्य और आधारभूत सुविधाओं की कमी
10. युवाओं की बढ़ती अपेक्षाएं

9.2. आगे की राह

वर्तमान बिहार की राजनीति में सामाजिक न्याय एक स्थायी और प्रभावशाली अवधारणा बन चुका है। लेकिन आज सामाजिक न्याय की अवधारणा केवल जातीय प्रतिनिधित्व तक सीमित नहीं रह सकती।

नई परिस्थितियों में सामाजिक न्याय को शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, महिला सशक्तिकरण, तकनीकी विकास और आर्थिक अवसरों से जोड़ना आवश्यक है।

10. निष्कर्ष

बिहार की राजनीति में सामाजिक न्याय का विमर्श भारतीय लोकतंत्र के विकास की एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। इसने उन वर्गों को राजनीतिक आवाज दी जो सदियों से सत्ता और संसाधनों से वंचित थे। कर्पूरी ठाकुर से लेकर लालू प्रसाद यादव और नीतीश कुमार तक विभिन्न नेताओं ने सामाजिक न्याय को अलग-अलग रूपों में आगे बढ़ाया।

सामाजिक न्याय की राजनीति ने बिहार में लोकतंत्र का सामाजिक आधार विस्तृत किया। पिछड़े, दलित, अत्यंत पिछड़ा वर्ग एवं अल्पसंख्यक वर्गों को राजनीतिक प्रतिनिधित्व मिला। इससे सामाजिक आत्मविश्वास और राजनीतिक चेतना का विकास हुआ। हालाँकि इस राजनीति की सीमाएं भी रहीं। जातीय ध्रुवीकरण, भ्रष्टाचार, अपराध और विकास की कमी जैसी समस्याएं सामने आईं।

लेकिन इसके बावजूद सामाजिक न्याय ने बिहार के सामाजिक और राजनीतिक ढाँचे को गहराई से बदल दिया। आज आवश्यकता है कि सामाजिक न्याय को केवल जातीय प्रतिनिधित्व तक सीमित न रखा जाए बल्कि इसे शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, महिला सशक्तिकरण और आर्थिक विकास से जोड़ा जाए। तभी सामाजिक न्याय की अवधारणा वास्तव में सार्थक हो सकेगी।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि बिहार की राजनीति में सामाजिक न्याय का विमर्श केवल एक राजनीतिक नारा नहीं बल्कि सामाजिक परिवर्तन की ऐतिहासिक प्रक्रिया है जिसने लोकतंत्र को समाज के अंतिम व्यक्ति तक पहुँचाने का प्रयास किया।

संदर्भ सूची / Bibliography

Ambedkar, B.R. (1936). Annihilation of Caste. New Delhi: Navayana Publishing.

Hasan, Zoya (2009). Politics of Inclusion: Castes, Minorities, and Affirmative Action. New Delhi: Oxford University Press.

Jaffrelot, Christophe (2003). India's Silent Revolution: The Rise of the Lower Castes in North India. New Delhi: Permanent Black.

Kothari, Rajni (1970). Politics in India. New Delhi: Orient BlackSwan.

Lohia, Ram Manohar (1964). Samata aur Samajwad. Allahabad: Lok Bharti Prakashan.

Srinivas, M.N. (1966). Social Change in Modern India. Berkeley: University of California Press.

Yadav, Yogendra (1999). "Changing patterns of caste politics in Bihar". Economic and Political Weekly, 34(34/35) 2393-2399.

Shah, Ghanshyam (2004). Social Movements in India: A review of literature. New Delhi: Sage Publications.

Constitution of India (2024). New Delhi: Government of India Press.

Government of Bihar (Various Years). Bihar Economic Survey. Patna: Finance Department, Government of Bihar.

University Grants Commission (2018). UGC regulations on minimum qualification for appointment of teachers and other academic staff in universities and colleges. New Delhi: UGC.

1857 की क्रांति में महिलाओं का योगदानः शौर्य और बलिदान की गौरवगाथा

रूबी यादव*

अंग्रेज भारत में अन्य यूरोपीय कंपनियों की भांति व्यापार करने आए थे किंतु 1757 के प्लासी के युद्ध एवं 1764 के बक्सर के युद्ध के पश्चात भारत में अपनी स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए भारतीयों का शोषण करने लगे। जिसके परिणाम स्वरूप 1857 की क्रांति का जन्म हुआ। 1857 का यह प्रथम स्वतंत्रता संग्राम भारतीय इतिहास का एक स्वर्णिम अध्याय है। इस महासंग्राम में केवल पुरुषों ने ही नहीं, बल्कि महिलाओं ने भी अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए तलवार उठाई थी। उन्होंने रूढ़िवादी सामाजिक बेड़ियों को तोड़कर युद्ध के मैदान में कदम रखा। इन वीरांगनाओं का योगदान केवल महलों तक सीमित नहीं था, बल्कि वे सीधे युद्धभूमि में अंग्रेजों से लोहा ले रही थी।

इस क्रांति में प्रमुख महिलाओं **झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, झलकारी बाई, अजीजन बेगम, अवंती बाई लोधी,बेगम हजरत महल, कुमारी मैंना, चौहान रानी, बेगम जीनत महल** इत्यादि वीरांगनाओं ने महत्वपूर्ण योगदान दिया।

1. झांसी की रानी लक्ष्मीबाई

प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम में जिन वीरांगनाओं ने भारतमाता के मस्तक को गौरव से ऊंचा किया, उनमें महारानी लक्ष्मीबाई का नाम सर्वोपरि है। वह झाँसी के राजा गंगाधर राव की मृत्यु के बाद झाँसी की रानी बनी। भारत में ईस्ट इंडिया कम्पनी के तानाशाही राज को चुनौती देने वाली झांसी की रानी लक्ष्मीबाई देशी रियासत की पहली शासिका थी ।। इन्होंनें झाँसी की स्वतंत्रता के साथ साथ पूरे देश को भी अंग्रेजों से आजाद कराने का सपना देखा और उसके लिए लड़ी। लक्ष्मीचाई किसी एक रियासत पर राज करने के लिए नहीं लड़ रही थी, बल्कि पूरे देश की आजादी चाहती थी। इस बात की जानकारी उनके उस पत्र से लगती है, जिसे उन्होंने अपने समर्थक पड़ोसी राजा मर्दान सिंह को लिखा था। उन्होंने लिखाः बहुत से सहयोगियों और तांत्या टोपे से सलाह मशविरे के बाद हम इस नतीजे पर पहुंचे है कि हमारा अपना शासन होना चाहिए। यह हमारा अपना देश हैं। गंगाधर राव की मृत्यु के बाद अंग्रेजों ने उनके दत्तक पुत्र दामोदर को उसका उत्तराधिकारी मानने से इन्कार कर दिया। लक्ष्मीबाई ने अंग्रेजों की इस राज्य हड़प नीति का डटकर विरोध किया और गुप्त रूप से अपनी सैनिक तैयारी की। सभी जातियों के नौजवानों और नवयुवतियों को उन्होंने सैनिक शिक्षा देने की कोशिश की। उसकी सेना में घुड़सवारों की प्रधान स्वयं रानी और तीन कर्नल सुंदर, सुंदर और काशी बाई थी तथा जासूस विभाग की प्रधान मोतीबाई और उनकी नायब जूही दोनो महिलाएं नियुक्त की गई थी। 2 मार्च, 1858 को अप्रेंज कंमाडर ह्यूरोज ने झाँसी के किले को घेर लिया। रानी व उसकी सेना ने वीरता के साथ मुकाबला किया। मौर्चा पर डटे सिपाहियों के लिए भोजन, जल व्यवस्था, बारूद एवं गोले तैयार कराने, तोपों तक उन्हें पहुंचाने और खुद तोपें चलाने में महिलाएँ पुरुषों की मदद करती थी। कमांडर ड्यूरोज ने दुरबीन से स्त्रियों को भी गोला-बारूद ढोते और तोप चलाते देखा था। 3। गंगाधर राव की मृत्यु 28 मार्च, 1858 को अग्रेजों की गोलाबारी से किले में गोले बारूद के भंडार में आग लग गई, परन्तु रानी ने हिम्मत नहीं हारी और युद्ध को जारी रखा। अंग्रेज रानी को कैद करना चाहते थे, परन्तु रानी अपनी चतुराई से किले से बाहर निकलने में कामयाब हो गई। झाँसी से रानी कालपी पहुंची और उसके पश्चात् ग्वालियर, परन्तु अंग्रेज निरन्तर उसका पिछा करते रहे। ग्वालियर में अंग्रेजों

* छात्रा–एम.ए (द्वितीय वर्ष), इतिहास
रोल नंबर – 25604095039, श्री गणेश स्नातकोत्तर महाविद्यालय, डोभी, जौनपुर।

ने उस स्थान पर आक्रमण किया जहाँ पर रानी ठहरी हई थी। लड़ते लड़ते रानी अंग्रेज सैनिकों से घिर गई। उसके शरीर का दाया भाग घायल हो गया। परन्तु वह इसकी चिंता छोडकर किले से बाहर निकली और अंग्रेजों ने उसका पीछा किया। उनके बचे हुए दो-तीन साथी उन्हें पास के बाबा गंगादास के आश्रम में ले गए, जहाँ उन्होंने अतिंम सांस ली। लक्ष्मीबाई की बहादुरी का लोहा फिरंगी भी मानते थे। अग्रेंजी सेना के मुख्य कमांडर ने रानी की बहादुरी के बारे में एक पत्र में लिखा- हालांकि वे एक महिला थी, लेकिन बहादुरी में जवाब नहीं और और विद्रोहियों की सर्वोतम सैनिक नायिका थी। वह विद्रोहियों में एक पुरुष थी।

"बुन्देलों" हर बेलों के मुंह से हमने सुनी कहानी थी
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।[1]

2. झलकारी बाई

बहादुरवीरांगना झलकारी बाई झाँसी राज्य के एक बहादुर कृषक सदोवा सिंह की पुत्री थी। उनका जन्म 22 नवम्बर, 1830 को झाँसी के समीप भोजला नामक गाँव में हुआ था। उसकी माता का नाम जमुना देवी था। उसके पिता ने उसका पालन पोषण पुत्र की भाँति किया। झलकारी के पिता ने डाकुओं के आंतक और उत्पात होते रहने के कारण उसे शस्त्र संचालन की शिक्षा दी थी, ताकि वह स्वंय अपनी सुरक्षा का प्रबन्ध कर सके। जब झाँसी का किला अंग्रेजी सेना ने घेर लिया और निरंतर तोपों से गोले बरसाकर स्थिति विकट बना दी, तब रानी ने किले के अन्दर युद्ध परिषद् की बैठकबुलाई। थोड़ी देर बाद ही प्रहरी ने आकर बताया कि महिला सैनिक झलकारी बाई अंदर आना चाहती है। रानी ने उसे तुरन्त बुला लिया। झलकारी ने निवेदन करते हुए कहा "बात यह है बाई साहब, कि हमारे सैनिकों की संख्या में निरंतर कमी होती जा रही है। खाद्य सामग्री पसी भी सीमित ही रह गई गई है। मेरे पति ने यह बताया कि हमारे तोपवियों में अनेक गद्दार होने की आशंका है। वे लोग अग्रेज सैनिकों को निशाना बनाकर खाली स्थानों पर गोले दाग रहे है। स्थिती कभी भी गंभीर बन सकती है। हमें किले को तुरन्त छोड़ देना चाहिए।

झलकारी बाई ने रानी से कहा कि मैं भी आपका वेश धारण करूंगी ताकि अंग्रेज सिपाही धोखे में पड़ जाए और इस प्रकार से रानी किले से निकल गई। शत्रु ने झलकारी को रानी समझकर उसे घेरने का प्रयत्न किया। शत्रु सेना से घिरी झलकारी भंवकर युद्ध करने लगी। एक मेदिए ने उसे पहचान लिया और उसने भेद खोलने का प्रयत्न किया, परन्तु झलकारी ने उसे अपनी गोली का शिकार बनाया। अंग्रेज सेनापति ह्यूरोज ने झलकारी को अपटते डपटते हुए कहा कि "तुमने रानी बनकर हमको धोखा दिया है और महारानी लक्ष्मीबाई को यहीं से निकलने में मदद की है। तुमने हमारे एक सैनिक की भी जान ली है। मैं भी तुम्हारे प्राण लूगा। **झलकारी ने गर्व से उत्तर देते हुए कहा-**

"मार दे गोली, मैं प्रस्तुत हूँ"।

रानी लक्ष्मीबाई ने झलकारी बाई के नेतृत्व मे महिलाओं की एक अलग टुकडी "दुर्गा दल" का गठन किया था।

झलकारी का उल्लेख **मराठा पुरोहित विष्णुराव गोड्से** की कृति **"माझाप्रवास"** मे मिलता है।

झलकारी बाई के दुर्गादल मे मोतीबाई' काशीबाई, जूही और दुर्गाबाई जैसी अनेक महिला सैनिक थी। जो अंग्रेजों से जुझने हुए वीरगति को प्राप्त हुई थी।

जनरल ड्यूरोज ने झलकारी को एक तम्बू में कैद कर लिया मौका पाकर झलकारी रात में चुपके से भाग निकली। जनरल ह्यूरोज ने प्रातः होते ही किले पर भयंकर आक्रमण कर दिया। अंग्रेज तोपची का गोला झलकारी के पास वाले तोपची को लगा। वह वह तोपची झलकारी का पति पूरन सिंह था। झलकारी ने तुरन्त तोप संचालन का कार्य सभांल लिया और वह शत्रु सेना को विचलित करने लगी। शत्रु सेना ने भी अपनी सारी

शक्ति उसके उपर लगा दी। इसी समय एक गोला झलकारी को भी लगा और 'जय भवानी' कहती हुई वह भी भूमि पर अपने अपने पति के शव के के समीप ही गिर पड़ी। वह अपना काम कर चुकी थी।

महारानी तपस्विनी झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई की भतीजी एवं उनके एक सरदार पेशवा नारायणराव की पुत्री थी। वह एक बाल-विधवा थी। उसके बचपन का नाम सुनन्दा था। नारायणराव की मृत्यु के बाद सुनन्दा उनकी जागीर की देखभाल करने लगी। वह लोगो को सरकार के विरूद्ध भड़कातीथी। अतः अंग्रेजी सरकार ने उन्हें कुछ समय के लिए बन्दी रखकर रिहा कर दिया। जेल से रिहा होने के बाद सुनन्दा ने सन्यास ग्रहण कर लिया और वह तपस्विनी के नाम से प्रसिद्ध हो गई परन्तु वह अपने प्रवचनों के माध्यम से जनता को क्रान्ति के लिए प्रेरित करती रहती थी। 1857 की क्रान्ति में उसने सक्रीय रूप से भाग लिया। क्रान्ति के दमन के बाद वह नाना साहब के साथ नेपाल चली गई और कुछ समय बाद वह कलकता आ गई। 1907 ई० में कलकत्ता में ही उनका देहांत हो गया।

3. अजीजन बेगम

1857 के स्वतंत्रता संग्राम में जन साधारण का प्रतिनिधित्व करने वाली महिला अजीजन ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। अजीजन बेगम अपने समय की एक प्रसिद्ध नर्तकी थी। 10 मई, 1857 को जब मेरठ में क्रान्ति की ज्वाला प्रज्जवलि हुई तो कानपुर में भी नाना साहब ने अनेक गुप्त बैठकें आयोजित करनी शुरू कर दी। 1 जुन 1857 को आयोजित एक गुप्त बैठक में नाना साहब, बाला साहिब, अजीमुल्ला खी के अतिरिक्त कुछ अन्य देशभक्तों ने भी भाग लिया जिसमें अजीजन बेगम बेगम भी थी। 8 कानपुर में विद्रोह के आरम्भ होते ही अजीजन ने वीर, साहसी व निर्भिक महिलाओं की एक टुकडी तैयार की जो घायल सैनिकों की सेवा, युद्ध में भाग लेने वाले सैनिकों को भोजन तथा आवश्यकता पड़ने पर रणभूमि में भी जाती थी। जुन 1857 को कानपुर पर नाना साहिब का अधिकार हो गया, परन्तु शीघ्र ही 16 जुलाई, 1857 को अग्रेजो ने पुनः कानपुर पर अधिकार कर लिया तो अनेक विद्रोहियों को गिरफ्तार कर लिया जिनमें अजीजन भी थी। अग्रेज जनरल हैवलाक ने अजीजन के समक्ष प्रस्ताव रखा कि यदि वह अपने कार्य के लिए पश्चाताप करे तथा क्षमा प्रार्थना करें, तो उसे मुक्त कर दिया जाएगा परन्तु वीरांगना अजीजन ने हैवलाक के इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया। उन्होंने स्पष्ट कहा कि वे अग्रेजों का विनाश चाहती है। अन्तः में हैवलाक ने उन्हे मृत्यु दण्ड दिया और अचेंज सैनिकों ने उन्हे अपनी गोलियों का निशाना बनाया। इस प्रकार से अजीजन अपने देश के लिए शहीद हो गई।

4. अवंती बाई लोधी

रानी अवंतीबाई लोधी ने भी 1857 के विद्रोह में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई परन्तु हमारा देश काफी हद तक उसके कार्यों से अनभिज्ञ रहा है। वेमध्यप्रदेश में रामगढ़ रियासत की शासिका थी। 1857 की क्रान्ति की नायिका ने अग्रेजों को जितनी लड़ाईयों में पराजित किया, उस तरह के उदाहरण कम ही मिलते हैं। जुलाई 1857 में अवंतीबाई ने स्वंय घोड़े पर सवार होकर अपनी सेना का नेतृत्व किया और सुहागपुर पर कब्जा कर लिया। अगला युद्ध शाहपुरा के पास हुआ। यहाँ भी अचेंजों को शर्मनाक हार का सामना करना पड़ा। यहाँ पर भी काफी अग्रेज सैनिक मारे गए। यह युद्ध इतना भयंकर था कि अग्रेज कंमाडर कैप्टन वाशिंगटन को इस प्रकार से मोचों छोड़कर भागना पड़ा कि वह अपने काफी छोटे बच्चे को भी अपने साथ नहीं ले जा सके। रानी अवंतीबाई लोधी ने इस बच्चे को सुरक्षित उसके पिता के पास पहुँचा दिया। अप्रैल 1858 में जब पहाडी क्षेत्र देवहारगढ़ में रानी और उसकी सेना अग्रेजों से मोर्चा ले रहे थे तो एक पड़ोसी राजा की मदद की वजह से उसकी सेना पर पीछे से आक्रमण बोला गया। रानी ने अग्रेजों से हार मानने या समर्पण करने की बजाए अपनी ही तलवार से अपनी जान ले कर देश की आजादी के आंदोलन में अपनी महान भागीदारी दर्ज करा दी।

5. बेगम हजरत महल

अवध की बेगम हजरत महल ने भी 1857 के विद्रोह में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होंने अपने अल्पवयस्क पुत्र बिरजिस कादिर की संरक्षिका बनकर अवध में विद्रोहियों का नेतृत्व किया क्योंकि अग्रेजों ने कुशासन का आरोप लगाकर अवध को 1856 में ब्रिटिश साम्राज्य में शामिल कर लिगा था। बेगम ने अग्रेंजों के खिलाफ एक मोर्चा बनाकर अवध के क्षेत्र में गोरे शासकों को जबरदस्त चुनौती प्रस्तुत की। लखनऊ पर अग्रेजी सेना के हमले के खिलाफ उन्होंने अपने सहयोगियों के साथ जबरदस्त मोर्चा लिगा। इस मोर्चे पर इंकलाविगों ने बहादुरी के जो कारनामे अंजाम दिए, वे लोककथाओं और गीतों का विषय बने। दुर्भाग्य से लखनऊ के मोर्चे पर उनकी हार हुई, क्योंकि अग्रेजों के समर्थन में गोरखो और दलाल राजाओं की विशाल सेनाएँ युद्ध में शामिल हो गई। लखनऊ छोड़कर उन्होंने शाहजहाँपुर पर हमले का नेतृत्व किया, लेकिन पुवायां के राजा की गद्दारी की वजह से वहाँ भी जीत हासिल न हो सकी। इस बहादुर रानी ने हथियार डालने की वजह नाना साहब के साथ मिलकर नेपाल के तराई क्षेत्र में भारत की आजादी का परचम थामे रखा और लड़ती रही।

↑

समकालीन अग्रेज पत्रकार रसल ने उनकी प्रशंसा में लिखा था कि " बेगम महान शक्ति और काबलियत रखती थी। महिला होने के बावजूद मानसिक तौर पर वे बहुत प्रबुद्ध और समझदार श्री और पुरुषों का नेतृत्व करने की भरपूर क्षमता रखती थी।"

बेगम हजरत महल के सैनिक दल में तमाम महिलाए शामिल थी। जिनका नेितृत्व ' **रहीमी'** करती थी।

लखनऊ में सिकन्दराबाग किले पर हमले मे वीरांगना ऊदादेवी ने अकेले ही अंग्रेजों से मुकाबला करते हुए लगभग 32 अंग्रेज सैनिकों को मार दिया था। अन्त में वीरांगना ऊदादेवी कैप्टन वेल्स की गोली का शिकार हो गयी

उदादेवी का जिक अमृतलाल सागर की कृति "बादर के फूल" में किया है

6. कुमारी मैना

कुमारी मैना नाना साहब की दत्तक पुत्री थी। उसमें राष्ट्रीयता की भावना कूट-2 भरी हुई थी। 1857 की क्रान्ति के दौरान अग्रेजों ने मैना को बन्दी बना लिया। उन्होंने मैना को डरा धमका कर नाना साहब का गुप्त रहस्य जानने का प्रयास किया परन्तु उन्होंने कुछ भी नहीं बताया । अतः अग्रेजों ने मैना को जलती हुई अग्नि में फेंक दिया। जिसमें झुलसकर वह मर गयी।

7.मस्तानीबाई

पेशवा बाजीराव की फौज ज के साथ विठूर आने वाली मस्तानी बाई ने भी कानपुर में स्वाधीनता संग्राम में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। मुजफ्फरनगर के मुंडभर की महावीरी देवी ने 1857 के संग्राम मे 22 महिलाओं के साथ मिलकर अंग्रेजों पर हमला किया था। अनुप शहर की चौहान रानी ने भी अंग्रेजों पर हमला किया था। सत्ता को सशस्त्र चुनौती दी थी, और अनुप शहर के थाने पर लगे युनियन जैक को उतारकर हरा राष्ट्रीय झण्डा फहराया था।

वस्तुतः इतिहास के पन्नों में ऐसी अनगिनत कहानी दर्ज है। जहां वीरांगनाओं ने अपने साहस और वीरतान के बल पर अंग्रेजो के छक्के छुड़ा दिये।

8. चौहान रानी

अनूपनगर के राजा प्रताप चण्डीसिंह की पत्नी चौहान रानी के नाम से प्रसिद्ध थी। चण्डीसिंह की मृत्यु के बाद रानी ने शासन प्रबन्ध अपने हाथों में ले लिया। लार्ड डलहौजी ने अनूपनगर का राज्य भी कम्पनी के साम्राज्य में मिला लिया, जिससे रानी अग्रेजों की कट्टर दुश्मन बन गई। 1857 ई० की क्रान्ति के समय रानी

ने अपने खोये हुए राज्य पर पुनः अधिकार कर लिया। उसने कई अग्रेंज सैनिकों को मार दिया और उनके राज राजकोष को भी लूट लिया। रानी ने 15 महिनों तक अनूपनगर पर शासन किया। क्रान्ति को कुचलने के बाद अग्रेजो ने अनुपनगर को पुनः अग्रेजी साम्राज्य में मिला लिया। बाद में अर्थ जो ने चौहान रानी के साथ बहुत बुरा व्यवहार किया। इस पर रानी अनूपनगर से चली गई।

9.द्रोपदीबाई

1857 की क्रांति में अंग्रेजों का प्रबल प्रतिशोध करने के लिए धार क्षेत्र मे रानी द्रोपदीबाई ने अपनी सेना मे अरब अफगान आदि सभी वर्ग के लोगों को नियुक्त किया। रानी द्रोपदी ने गुलखान बादशाहखान ,सहादतखान जैसे कांतिकारी नेताओं ने समझौता किया 22 अक्टूबर 1857 को ब्रिटिश सैनिको ने धार जिले को घेर लिया तो क्रांतिकारियों और ब्रिटिश सैनिकों के बीच 24 से 30 अक्टूबर तक कडा संघर्ष चला यदपि अंग्रेज किले को ध्वस्त करने में सफल हो गये, किन्तु रानी द्रोपदी अपने त्याग और बलिदान के कारण कांतिकारियों के लिए प्रेरणाप्रद थी। और महिलाओं ने 1857 की क्रांति में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई अतः इसप्रकार जैतपुर, तेजपुर हिंडोरिया की रानियों ने भी अंग्रेज से मोर्चा लिया।

इस प्रकार 1857 की क्रांति में भारतीय महिलाओं ने अपने त्याग, वीरता और बलिदान द्वारा यह सिद्ध कर दिया कि महिलाए किसी भी रूप में पुरुषों से कमजोर नहीं है। और महिलाए पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर 1857 की क्रांति मे अपना बराबरी का योगदान दिया।

10. बेगम जीनतमहल

बेगम जीनत महल का प्रथम भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में महत्वपूर्ण योगदान माना जाता है। यद्यपि बेगम जीनत महल ने झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई की भाँति शस्त्र पारण करके युद्ध भूमि में भाग लेकर अग्रेजो को तलवार के घाट नहीं उतारा था। बेगम में अपूर्ण साहस और सुझ बूझ की असाधारण क्षमता विधमान थी। बेगम जीनत महल ने ही मुगल सम्राट बहादुरशाह जफर को अत्याचारी अग्रेजी शासन के विरूद्ध युद्ध का संचालन एवं उसका नेतृत्वके लिए प्रेरित किया था। 10 मई, 1857 को मेरठ में विद्रोह होने के बाद अनेक विद्रोही सैनिकों ने दिल्ली के प्रस्थान किया

निष्कर्ष उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि 1857 की क्रान्ति ने समाज के उस भ्रम को झुठला दिया कि महिलाएं सिर्फ घर की चार दिवारी के अन्दर ही रह सकती है. सौन्दर्य की वस्तु है. उनमें नेतृत्व की क्षमता का अभाव होता है। महिलाओं ने इस क्रान्ति में न सिर्फ भाग लिया, बल्कि अपने शौर्य से तत्कालीन ब्रिटिश शासकों को आश्चर्यचकित कर दिया। महिलाओं ने यह दिखा दिया कि अगर कोई भी उनके स्वाभिमान और अधिकार को चुनौती देगा तो वे मरते दम तक उसका डटकर मुकाबला करेंगी। 21 वीं शताब्दी में भारतीय समाज को इन महिलाओं से प्रेरणा लेने की आवश्यकता है, तभी हम विश्व परिदृश्य पर अपनी सशक्त उपस्थिती दर्ज करा पाएंगे

संदर्भ ग्रंथसूची

वी.डी. सावरकर	-	**द इंडियन वॉर ऑफ़ इंडिपेंडेंस**
बी. एल. ग्रोवर	-	**आधुनिक भारत का इतिहास**
एस.के.पांडे	-	**आधुनिक भारत का इतिहास**
बिपिन चंद्र	-	**आधुनिक भारत का इतिहास**

मुगल काल में स्थापत्य कला का विकास

सौम्या सिंह*

मुगल काल में भारत में स्थापत्य अर्थात भवन भवन निर्माण की शैली में निरंतरता तथा परिवर्तन दोनों देखे जा सकते हैं. .शुरूआती दौर में परंपरागत भारतीय शैली के भवनों में मुगलों ने संशोधन करते हुए उन्हें इस्लामी रूप में विकसित किया. परंपरागत भारतीय एवं मुगल शैलियों के समामेलन से विकसित शैली को इंडो-पार्थियन स्थापत्य शैली अथवा इंडो-सासानिय स्थापत्य शैली के नाम जाना जाता है .यह शैली बाबर से लेकर आगे लगातार विकसित होती रही. इस शैली के विकास को निम्नलिखित क्रमागत रूप में देखा जा सकता है -

A.बाबर के काल में स्थापत्य का विकास

बाबर का जयादा समय युद्धों में व्यतीत हुआ अतः स्थापत्य में कोई ज्यादा परिवर्तन नहीं ला सका और प्राय पुराने भारती भवन में ही संशोधन कर उसने उन्हें इस्लामी पद्धति पर रूपांतरित कर दिया. प्रमुख भवन-

a.काबुली बाग मस्जिद पानीपत -इसका निर्माण बाबर ने 1528 29 में कराया इसकी शैली पूरी तरह से भारतीय है

b.जामा मस्जिद- संभल -बाबर ने 1528 29 में संभल में जामा मस्जिद का निर्माण करवाया.

c.आरामबाग रामबाग -आगरा

B.हुमायूं के काल में स्थापत्य का विकास

हुमायूं को भी स्थापत्य विकास का पर्याप्त अवसर नहीं मिला इसके काल मे केवल एक उल्लेखनीय निर्माण हुआ.

a.दिनपनाह इसका निर्माण 1533 में हुमायूं द्वारा दिल्ली में कराया गया

C.शेरशाह के काल में स्थापत्य का विकास

शेरशाह ने भवन निर्माण में नए प्रयोग किए उसके काल में निर्मित प्रमुख स्मारकों का निर्माण हुआ

शेरशाह का मकबरा -शेर सारे सासाराम बिहार में एक बड़े तालाब में अपने मकबरे का निर्माण करवाया जो अष्ट कोड़ी है और चारों ओर मेरा दार बरामदे से घिरा हुआ है

पुराना किला शेरशाह ने दिल्ली में पुराने किले का निर्माण कराया जिस की दीवारें धूषण पत्थरों से निर्मित है

D.अकबर के काल में स्थापत्य का विकास

अकबर ने स्थापत्य काफी रूचि दिखाई उसके काल में निम्नलिखित भवनों का निर्माण हुआ पहला

a.हुमायूं का मकबरा इसका निर्माण हुमायूं की विधवा हाजी बेगम द्वारा दिल्ली में कराया गया यह फारसी शिल्पकार मिर्जा ग्यास बेग की देखरेख में निर्मित हुआ इसमें ईरानी तथा भारतीय शैलियां सम्मिलित रूप से देखी जा सकती हैं यह ऊंचे चबूतरे पर अष्टकोणीय आकार लाल बलुआ पत्थर से निर्मित किया गया है.शीर्ष पर सफेद संगमरमर का दोहरा गुंबद बनाया गया है पूरी इमारत एक बगीचे में स्थित है

b.आगरा का किला -यह अकबर द्वारा निर्मित प्रथम पहला किला है जिसका निर्माण कासिम खान के देखरेख में यमुना नदी के किनारे 1565 में निर्माण कराया गया. इसमें दो प्रवेश द्वार हैं पहला दिल्ली दरवाजा दूसरा

*छात्रा–एम.ए. (द्वितीय वर्ष) इतिहास, श्री गणेश स्नातकोत्तर महाविद्यालय, डोभी, जौनपुर।
रोल नंबर – 25604095044

अमर सिंह दरवाजा. इस किले की दीवारें लाल पत्थर से निर्मित है. इसमें इस समय दो भवन मौजूद है- पहला जहांगीरी महल जो अकबर ने अपने पुत्र शहजादा सलीम के आवास हेतु बनवाया था. दूसरा अकबरी महल .

c.**फतेहपुर सीकरी-** आगरा से 23 मील दूर स्थित फतेहपुर सीकरी में अकबर ने एक नई राजधानी बनाई. यह एक कृत्रिम झील के किनारे पहाड़ी पर स्थित है. इसमें कई भवन निर्मित हैं जैसे- 1-दीवाने आम जहां अकबर का दरबार लगता था. 2.पंचमहल जो 5 मंजिल इमारत है.3. खास महल जो अकबर का आवास था. 4.जोधा बाई का महल जो फतेहपुर सीकरी में निर्मित भवनों में सबसे बड़ा तथा गुजराती शैली में बना है .6.जामा मस्जिद इस मस्जिद के सहन में सलीम चिश्ती का मकबरा है इसका दक्षिणी द्वार बुलंद दरवाजा के रूप में विख्यात है.

d.**लाहौर का किला** -इसे अकबर द्वारा आगरे के किले के समान शैली में लाल पत्थरों द्वारा निर्मित कराया गया है. इसमें भारतीय शिल्प कला का प्रभाव देखा जा सकता हे.

e.**इलाहाबाद का किला** - अकबर द्वारा 1583 में गंगा-यमुना संगम पर इस किले का निर्माण कराया गया है. इसमें कोष्ठकों का प्रयोग किया गया है जो भारतीय शैली का प्रतिनिधित्व करता है. इसमें स्तंभ जोड़े में है.

f.**अजमेर का किला** -यह 1570 में अकबर द्वारा सुरक्षा हेतु बनवाया गया था.

g.**अटक का किला**- 1581 में अटक में अकबर द्वारा इस विशाल किले का निर्माण कराया गया.

h.अकबरी मस्जिद- अजमेर में अकबर द्वारा इस मस्जिद का निर्माण कराया गया.

E.जहांगीर के काल में स्थापत्य का विकास

जहांगीर के काल तक आते-आते स्थापत्य में अनेक परिवर्तन देखे जाने लगे. जहां अकबर के काल में लाल पत्थरों का प्रयोग ज्यादा होता था वही जहांगीर के काल से धीरे-धीरे संगमरमर का अधिक प्रयोग देखा जाने लगा. साथ ही भवनों में नक्काशी ज्यादा होने लगी. जहाँगीर के काल में निम्न प्रमुख स्थापत्य का निर्माण हुआ-

a.**अकबर का मकबरा** -इसकी शुरुआत अकबर द्वारा की गई थी किंतु इसे जहांगीर द्वारा पूरा किया गया .यह आगरा से 5 मील दूर सिकंदरा में स्थित है.

b.**एत्मादुद्दौला का मकबरा**- आगरा में नूरजहां द्वारा अपने पिता एतामाद्दुदौला के मकबरे कमरे का निर्माण 1526 में कराया गया .इसमें संगमरमर का काफी प्रयोग किया गया है और पित्रादुरा शैली का प्रयोग पहली बार किया गया है .

c.**जहांगीर का मकबरा-** शाहदरा लाहौर में स्थित है यह वर्गाकार है इसकी योजना जहांगीर द्वारा बनाई गई थी किंतु उसका निर्माण शाहजहां द्वारा कराया गया .

d.**मोती मस्जिद** -लाहौर जहांगीर द्वारा लाहौर में मोती मस्जिद का निर्माण कराया गया.

e.**शालीमार बाग तथा निशात बाग़** -जहाँगीर द्वारा कश्मीर में इन बागों का निर्माण कराया गया.

F.शाहजहां के काल में स्थापत्य का विकास

शाहजहां के काल में मुग़ल स्थापत्य ने अपने चरमोत्कर्ष को प्राप्त कर लिया.अब स्थापत्य में सफ़ेद संगमरमर तथा दीवारों पर नक्काशी की प्रमुखता स्थापित हो गई. शाहजहां ने निम्न स्थापत्य का निर्माण कराया-

a.**आगरा के किले में नए भवन** - शाहजहाँ ने अकबर द्वारा निर्मित दीवाने आम को संगमरमर से नए सिरे से बनवाया. दीवाने खास जो संगमरमर कथाकार भवन है और अत्यधिक अलंकृत है. मोती मस्जिद आगरा के किले में शाहजहां द्वारा इसका निर्माण 1645-53 के मध्य कराया गया जामा मस्जिद किले के उत्तर पश्चिम में शाहजहां की जेष्ठ पुत्री जहांआरा द्वारा इसका निर्माण कराया गया.

b.**ताजमहल** -शाहजहां द्वारा अपनी पत्नी मुमताज महल की स्मृति में आगरा में 1631 से 48 के मध्य ताजमहल का निर्माण यमुना नदी के तट पर कराया गया इसका निर्माण उस्ताद इसा खा की देखरेख में हुआ.

इसके ऊपरी भाग पर गुंबद है तथा चारों कोनों पर चार मीनारें स्थित है.इसमें मकराना के संगमरमर का प्रयोग किया गया है.

c.**लाल किला-** दिल्ली शाहजहां द्वारा 1638 में दिल्ली में लाल किले का निर्माण कराया गया. यह लाल पत्थरों से निर्मित है. इसका मुख्य प्रवेश द्वार लाहौरी द्वार है इसमें दीवाने आम, दीवाने खास का निर्माण कराया गया है.

d.**जामा मस्जिद** दिल्ली लाल दिल्ली में लाल किले के बाहर ऊंचे चबूतरे पर इसका निर्माण शाहजहां द्वारा कराया गया.

G.**औरंगजेब के काल में स्थापत्य का विकास**

औरंगजेब की रुचि कला क्षेत्र में अत्यल्प थी.उसने सीमित भवनों का निर्माण कराया. उसके काल में निर्मित प्रमुख स्थापत्य निम्न है-

a.**मोती मस्जिद** -दिल्ली औरंगजेब द्वारा दिल्ली के लाल किले के अंदर संगमरमर से मोती मस्जिद का निर्माण कराया गया.

B.राबिया उद दौरानी का मकबरा औरंगजेब ने अपनी पत्नी की याद में औरंगाबाद में इस मकबरे का निर्माण कराया. इसे ताजमहल की नकल माना जाता है

c.**बादशाही मस्जिद** -लाहौर औरंगजेब द्वारा 1674 में इसका निर्माण कराया गया

इस प्रकार हम देखते हैं कि बाबर के काल से लेकर विकसित होती हुई स्थापत्य शैली ने शाहजहां के काल तक आते-आते अपने चरम को प्राप्त कर लिया प्राप्त कर लिया और औरंगजेब के काल में इसका अवसान हो गया.

संदर्भ सूची –

मुगल आर्किटेक्चरः एन आउटलाइन ऑफ इट्स हिस्ट्री एंड डेवलपमेंट: प्रो. एब्बा कोच (Ebba Koch)
आर्किटेक्चर ऑफ मुगल इंडियाः कैथरीन बी. एशर (Catherine B. Asher)
हिस्ट्री ऑफ मुगल कला और वास्तुकला (History of Mughal Architecture): डॉ. आर. नाथ (R. Nath)
शाहजहानाबादः द सोवरेन सिटी इन मुगल इंडियाः स्टीफन पी. ब्लेक
मुगलकालीन भारतः डॉ. आशीर्वाद लाल श्रीवास्तव और डॉ. जदुनाथ सरकार
आईन-ए-अकबरी और अकबरनामाः अबुल फजल द्वारा
पादशाहनामाः अब्दुल हमीद लाहौरी द्वारा लिखित (शाहजहाँ के दरबारी इतिहासकार)
तुजुक-ए-बाबरी (बाबरनामा): सम्राट बाबर की आत्मकथा।
शाहजहाँनामाः इनायत खान
तज़किरात-उल-वाक्यातः जौहर आफताबची

हिन्दी साहित्यकारों के यात्रा–साहित्य का मूल्यांकन (विशेष संदर्भ : रूसी यात्रा)

मुकेश कुमार*

शोध-सार :

गद्य का आविर्भाव जटिल भाव बोध को अभिव्यक्त करती है। 'गद्य' विभिन्न स्वरूपों और आयामों में अभिव्यक्ति का माध्यम है। इसी क्रम में यात्रा-वृत्तांत, यात्रा-संस्मरण और यात्रा-साहित्य विकसित हुई। यात्राओं के द्वारा ही एक देश से दूसरे देश में निकटता बढ़ती है तथा व्यक्ति-व्यक्ति, देश-देश और संस्कृति-संस्कृति में सामीप्यता बढ़ती है। इस यात्रा-साहित्य के अंतर्गत विभिन्न समस्याओं का उल्लेख है। तथा तमाम पहलुओं पर साहित्यकारों ने गहन अध्ययन किया । रूस की यात्रा करने वाले साहित्यकारों की यात्रा के दौरान प्राप्त अनुभवों को सृजनात्मक प्रतिभा से शब्द-बद्ध किया, साथ ही वह उस समय के राजनैतिक संबंध, आर्थिक, सामाजिक, शैक्षणिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक चेतना को समझते है। और उसी माध्यम से अपनी संस्कृति को समकक्ष रखते और उसे परखने की एक कोशिश करते है।

बीज शब्द : संस्कृति, इतिहास, आधुनिक, यात्रावर, सृजनात्मक, साहित्यिक, सांस्कृतिक चेतना, चरैवेति।

मानव विकास के इतिहास के साथ यात्रा का गहरा और अटूट नाता रहा है। आदि मानव से आधुनिक मानव बनने की प्रक्रिया में मानव की यात्रावर वृत्ती ने महती भूमिका निभाई है। मानव स्वभाव से ही जिज्ञासु, सौन्दर्य-प्रेमी और विकासशील प्रवृत्तियों से युक्त रहा है। उसमें प्रारंभ से प्रकृति के विविध सौन्दर्य को देखने का आकर्षण रहा है। इसी प्रवृत्ति ने मानव को यात्रा करने के लिए प्रेरित किया तथा 'चरैवेति-चरैवेति' को उसने अपना मूल-मंत्र बनाया। यात्रा प्रवृत्ति ने ही सामाजिक विकास और आत्मिक उन्नति का मार्ग प्रशस्त किया। इस दौरान मानव ने अनेक अज्ञात स्थलों, देशों व द्वीपों का अध्ययन किया। वास्कोडिगामा द्वारा भारत की खोज व कोलंबस द्वारा अमेरिका की खोज इसी यात्रा का परिणाम था। दुर्गम स्थलों को सुगम बनाया। कई प्राकृतिक वस्तुओं का अन्वेषण किया, यातायात के साधनों का विकास, पहिये के आविष्कार से लेकर अत्याधुनिक विमान के निर्माण तक में भी 'यात्रा' की व्यक्ति के सृजन-शक्ति को तथा अनुभव क्षेत्र को समृद्ध बनती है। 'यात्रा' व्यक्ति के अनुभव संचय के साथ-साथ ज्ञान प्राप्ति का भी बेहतर माध्यम है। ऐसा माना जाता है कि 'कागद लेखी' की अपेक्षा 'आँखिन देखी' पर आधारित ज्ञान ठोस और व्यपाक होता है। यह सर्वविदित है कि संसार के तमाम दार्शनिक, चिंतक, संत, ज्ञानी व महान साधक घुमक्कड़ रहे हैं। उन्होंने कूपमंडूकता को जड़ता का प्रतीक माना और भ्रमण को विकास और चैतन्य का। इस प्रकार 'यात्रा' ज्ञान के आधार का महत्वपूर्ण अंग है तथा उसके सर्वांगीण विकास का माध्यम है। यात्रा-साहित्य पिछले कई दशकों से रचा गया, वह हमारे समक्ष नई संवेदना और शिल्प दृष्टि से नए स्वरूप और आयाम प्रस्तुत करती है। इसमें न केवल यायावरी प्रवृत्ति वाले साहित्यकार उपस्थित होते हैं अपितु यात्रा पर गए साहित्यकार भी अपनी यात्रा संस्मरण प्रस्तुत करते हैं। ऐसी रचनाएँ हमारे मानस में रोमांच पैदा ही नहीं करती, बल्कि यात्रा साहित्य के साहित्यकारों के विचार व अनुभूतियों की अभिव्यक्ति का माध्यम भी होती है। ये रचनाएँ संसृति को समझने के साथ ही कला, धर्म, दर्शन, राजनीति और शिक्षा का विवरण प्रस्तुत करती है। वहाँ की भौगोलिक स्थिति, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, भाषा, धर्म, वेशभूषा, सामाजिक व आर्थिक स्थितियों का व्यापक परिचय रचनाकारों ने दिया है। भारतेन्दु के समय से ही यात्रा-साहित्य प्रकाश में आने लगा, तब से यह परंपरा अनवरत यात्रा-साहित्य को विकसित करती रही है। 'यात्रा-साहित्य' में रूस की यात्रा करने वाले लेखकों और पुस्तकों की सूची निम्नलिखित है – राहुल सांस्कृत्यायन (1सोवियत भूमि, 2 सोवियत मध्य एशिया, 3 रूस मे पच्चीस मास), अज्ञेय (एक बूँद सहसा उछली), रामकुमार वर्मा (स्मृति के अंकुर), बलराज साहनी (रूसी सफरनामा), रामधारी सिंह दिनकर (मेरी यात्राएँ)।

* शोधार्थी(यूजीसी नेट), बाबासाहेब भीमराव अंबेदकर बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

'रूस में पच्चीस मास' इस पुस्तक में लेखक ने राहुल सांकृत्यायन द्वारा लेनिनग्राद विश्वविद्यालय में अध्यापन के अनुभवों तथा पच्चीस महीनों के प्रवास का विस्तृत वर्णन किया है। उन्होंने युद्धोत्तर रूस के पुनर्निर्माण, कृषि व्यवस्था (कलखोज), शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाओं और कला-संस्कृति का गहन अध्ययन एवं सूक्ष्म विश्लेषण प्रस्तुत किया है। सांकृत्यायन जी ने सोवियत व्यवस्था की कमियों को निष्पक्ष दृष्टि से रेखांकित करते हुए उसकी उपलब्धियों की भी खुलकर सराहना की है। यह यात्रा-वृत्तांत तत्कालीन समाजवादी व्यवस्था का सजीव, यथार्थपरक और प्रभावशाली चित्र पाठकों के सामने प्रस्तुत करता है। पश्चिम के समृद्ध और समुन्नत देशों में भी कितनी ही चीजें मिलती हैं, लेकिन उनका उपयोग हजार में एक आदमी से भी कम के लिए होता है। सोवियत में शारीरिक, बौद्धिक और सांस्कृतिक विकास के साधन इतने बड़े पैमाने पर है कि उनसे सारी जनता फायदा उठाती है । यह कथन समाजवादी व्यवस्था और पूँजीवादी व्यवस्था के बीच के अंतर को स्पष्ट करता है। इसमें लेखक यह बताना चाहता है कि केवल वस्तुओं और सुविधाओं की अधिकता ही किसी देश की वास्तविक समृद्धि का प्रमाण नहीं होती, बल्कि यह महत्वपूर्ण है कि उन सुविधाओं का लाभ कितने लोगों तक पहुँचता है।

पश्चिम के समृद्ध देशों — जैसे अमेरिका, इंग्लैंड आदि — में विज्ञान, तकनीक, शिक्षा, मनोरंजन और संस्कृति के अनेक साधन उपलब्ध हैं। वहाँ बड़े-बड़े पुस्तकालय, आधुनिक अस्पताल, खेल सुविधाएँ, सांस्कृतिक संस्थान और विलासिता की वस्तुएँ बहुत मात्रा में मिलती हैं। लेकिन इनका लाभ मुख्यतः अमीर और उच्च वर्ग के लोग ही उठा पाते हैं। गरीब और श्रमिक वर्ग आर्थिक असमानता के कारण इन सुविधाओं से वंचित रह जाता है। इसलिए लेखक कहता है कि वहाँ हजार में एक आदमी ही इन साधनों का पूरा उपयोग कर पाता है। इसके विपरीत, सोवियत संघ (सोवियत रूस) में समाजवादी व्यवस्था थी। वहाँ सरकार का उद्देश्य केवल कुछ लोगों को नहीं, बल्कि पूरी जनता को समान अवसर देना था। शिक्षा, स्वास्थ्य, खेल, विज्ञान और संस्कृति के साधनों को बड़े पैमाने पर विकसित किया गया ताकि हर नागरिक उनका लाभ उठा सके। वहाँ निःशुल्क शिक्षा, सार्वजनिक पुस्तकालय, श्रमिकों के लिए सांस्कृतिक केंद्र, खेल संस्थाएँ और वैज्ञानिक प्रशिक्षण की सुविधाएँ उपलब्ध थीं। इसका परिणाम यह हुआ कि सामान्य मजदूर और किसान भी शारीरिक, बौद्धिक और सांस्कृतिक रूप से विकसित हो सके।

"शारीरिक विकास" से आशय है — स्वास्थ्य, खेल और व्यायाम की सुविधाएँ।

"बौद्धिक विकास" का अर्थ है — शिक्षा, विज्ञान और ज्ञान के अवसर।

"सांस्कृतिक विकास" से तात्पर्य है — संगीत, कला, साहित्य और रंगमंच जैसी गतिविधियों में भागीदारी। लेखक यह स्पष्ट करना चाहता है कि सोवियत व्यवस्था में विकास के साधन केवल अमीरों तक सीमित नहीं थे, बल्कि पूरी जनता के लिए थे। इसलिए वहाँ सामाजिक समानता और सामूहिक प्रगति को अधिक महत्व दिया गया।

इस प्रकार, इस कथन का मुख्य भाव यह है कि किसी देश की सच्ची उन्नति तभी मानी जाएगी जब उसके विकास का लाभ समाज के हर वर्ग तक समान रूप से पहुँचे। "पश्चिम के समृद्ध और समुन्नत देशों में भी कितनी ही चीजें मिलती हैं, लेकिन उनका उपयोग हजार में एक आदमी से भी कम के लिए होता है। सोवियत में शारीरिक, बौद्धिक और सांस्कृतिक विकास के साधन इतने बड़े पैमाने पर है कि उनसे सारी जनता फायदा उठाती है।"[1]

जब राहुल सांकृत्यायन ने वहाँ की फिल्म देखी तो उसकी तुलना भारत के फिल्मों और उसकी भाषा से किया है । उन्होंने लिखा है - एसियाई फिल्म अगर रोज-रोज भी नए-नए मिलते, तो मैं देखने के लिए तैयार था। अगले ही दिन (3 मार्च) को अबाय के गीत (पीस्ने अबायेफ) कजाक-फिल्म दिखाई जा रही थी। मैं उसे देखने के लिए चल पड़ा। कजाकस्तान मध्य एसिया का सबसे बड़ा और सबसे धनी प्रजातंत्र है। लेकिन यहाँ के लोगों में काफी संख्या 1917 ई. तक घुमन्तू या अर्धघुमन्तू पशु-पालकों की थी। इसकी अपार खनिज सम्पत्ति पृथ्वी के गर्भ में अछूती पड़ी हुई थी और कजाक नर-नारी लिखने-पढ़ने से बिलकुल अपरिचित थे। बहुत थोड़े-से मुल्ला और सरदार-उनमें भी

पुरुष ही पढ़ना-लिखना जानते थे, सो भी अरबी-फारसी भाषा में। अबायेफ कोई कल्पित नाम नहीं है। वह कजाक भाषा का महान् साहित्यकार और साहित्य-पिता माना जाता है। वह पिछली शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुआ था। अबायेफ के विद्याप्रेम ने परम्परा से चली आती मुल्लों और सरदारों के शिक्षा क्षेत्र तक ही उसे सीमित नहीं रक्खा, बल्कि कजाकस्तान के भिन्न-भिन्न स्थानों में बस गए रूसियों के सम्पर्क में आकर उसने रूसी भाषा और साहित्य का अध्ययन किया। इस प्रकार कजाक-साहित्य का आरम्भ करते ही उसने अपनी प्रौढ़ लेखनी से विनिःसृत परिपक्व ग्रंथों को अपनी जाति के सामने रक्खा। जीवन में उसको उतना मान नहीं मिला था, क्योंकि न उसने फारसी अरबी और न ही साहित्यिक तुर्की में अपनी पुस्तकें लिखी थीं। उसकी लेखनी अपनी मातृभाषा में चली थी, जो कि उस समय एक बोली समझी जाने से हीन दृष्टि से देखी जाती थी। यही कारण था अबायेफ के अपने जीवन में वह सम्मान न प्राप्त करने का, जो कि आज सोवियत काल में प्राप्त हो रहा है। आज वह कजाकस्तान का वाल्मीकि और अश्वघोष, कालिदास और बाण है। पीस्ने अबायेफ इसी अमर साहित्यकार के जीवन संगीत को लेकर बनाई गई थी।[2]

रामधारी सिंह दिनकर के साथ रूस यात्रा पर जब विद्वानों की मंडली गई थी तब उनको दुभाषिये मिली जो इतनी प्रख्यात थी कि लोग उसे भारत में मीरा कहकर पुकारते थे । वह इतनी प्रसिद्ध थी। वही रामधारी सिंह दिनकर अपनी रचना 'रूस की डायरी' में भाषा के संबंध में कहा है कि "हमारे शिष्टमंडल को दुभाषिये दिए गए हैं। एक तो मरियम है, जो भारतवर्ष में कई बार गई हैऔर दिल्ली में हम उसे मीरा कहकर पुकारते है ।"[3]

रामधारी सिंह दिनकर इतने प्रसिद्ध थे कि उनके साहित्य पर उस समय रूस में काम हो रहे थे । इससे मालूम पड़ता है कि दिनकर रूस में कितने प्रसिद्ध थे । उनकी ख्याति बहुत दूर-दूर तक थी । उनलोगों से मिलकर दिनकर ने 'उर्वशी' भेट भी किया था। "नौ अक्टूबर को ही श्री चेलीशेव मुझसे मिलने को एक होटल में आए। उनके साथ दो-तीन छात्राएं भी थी । एक छात्रा ने कहा, मैं आपके साहित्य पर काम कर रही हूँ।"[4]

जब हम साहित्य और रूस की बात करते है तो पूँजीवाद इससे अछूता कैसा रह सकता है । पूंजीवादी व्यवस्था हमेशा से सत्ता के पक्ष में रही है। जिसका विरोध हमेशा से साहित्यकार करते है। इसी को लेकर बलराज साहनी ने रूसी सफरनामा में पूंजी वादी व्यवस्था का उल्लेख करते है। "पूंजीवादी व्यवस्था आदमी में के लिए सबसे बड़ी और सबसे बड़ी और सबसे प्यारी चीज पैसा है।"[5]

पूंजीवादी व्यवस्था और समाजवादी व्यवस्था का उल्लेख के जगह इंकलाब की बात करते है। इंकलाब समाज के मनुष्य को जरूरत है न कि समाज में व्याप्त तमाम व्यवस्थाओं की । व्यवस्थाएँ समाज को एक संरचना में लाती है। इंकलाब उसको सुगठित करता और समृद्ध करता है। इंकलाब मनुष्य को बुराइओ से बचाता है। इसका उल्लेख बलराज साहनी ने रूसी सफरनामा में करते है। "इंकलाब की जरूरत समाज को नहीं, मनुष्य के चरित्र को है। व्यक्ति को अपने इर्द-गिर्द की बुराइयों से लड़ने के बजाय पहले अपने अंदर की बुराइयों से लड़ना चाहिए ।"[6]

बहरहाल, शिक्षा व्यवस्था से भी बुराइयों को दूर किया जा रहा है। भारत और रूस में शिक्षा निशुल्क और अनिवार्य है। उससे बल पर ही तमाम बुराइयों और कुरीतिओ को समाप्त कर देती । वो भी जब शिक्षा अपनी मातृभाषा में हो तो और सभी के लिए शिक्षा अनिवार्य है। "सोवियत शिक्षा प्रणाली में सात वर्ष की पढ़ाई अपनी मातृभाषा में सोवियत के हरेक लड़के और लड़की के लिए अनिवार्य है। अनिवार्य शिक्षा 14 वर्ष के साथ समाप्त होती।"[7] वही राहुल जी ने उसी संबंध में कहा है कि "शिक्षा के नए ढंग को वहाँ बड़े व्यापक रूप में अपनाया गया।"[8]

बहरहाल, राहुल जी जब उद्यान घूमने गए थे तो उसका उल्लेख करते है। "14 जुलाई को मास्को के महान बाग गोर्की-संस्कृति उद्यान को देखने गया।"[9] शिक्षा, स्वास्थ्य, खेल, विज्ञान और संस्कृति के साधनों को बड़े पैमाने पर विकसित किया गया ताकि हर नागरिक उनका लाभ उठा सके। वहाँ निःशुल्क शिक्षा, सार्वजनिक पुस्तकालय, श्रमिकों के लिए सांस्कृतिक केंद्र, खेल संस्थाएँ और वैज्ञानिक प्रशिक्षण की सुविधाएँ उपलब्ध थीं। ऐसा कहा जाता है कि रूस से भारत का बहुत सारा साहित्य प्रकाशित हो रहा था। "भारत का बहुत सा साहित्य यहाँ से प्रकाशित हुआ है और हो रहा है।"[10] रूस की यात्रा पर जीतने भी साहित्यकार गए, वे सब अपने ग्रंथ में संस्कृति, समाज और राजनैतिक पक्ष को उकेरने का प्रयास किया है। इससे जुड़ी हुई तमाम पहलुओं पर साहित्यकार की वैचारिकी हमेशा से स्पष्ट रही है। उन लोगों ने यात्रा के दौरान अपने अनुभवों को साझा करते है। इस दौरान यह जानने की कोशिश की

वहाँ का साहित्य भारतीय साहित्य पर कितना प्रभावी है। इन तमाम गतिविधि से उनलोगों ने समाज को अवगत कराया।

संदर्भ सूची –

1- सांस्कृत्यायन, राहुल, रूस में पच्चीस मास, राधाकृष्ण पेपरबैक्स, जगतपूरी दिल्ली, पहला संस्करण, 2025,पृष्ठ संख्या- 139
2- सांस्कृत्यायन, राहुल, रूस में पच्चीस मास, राधाकृष्ण पेपरबैक्स, जगतपूरी दिल्ली, पहला संस्करण, 2025,पृष्ठ संख्या- 142
3- नवल, सं. नन्दकिशोर, तरुण कुमार, रामधारी सिंह दिनकर रचनावली, खंड 13, लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज, द्वितीय संस्करण 2021, पृष्ठ सं- 164
4- वही पृष्ठ सं 163
5- साहनी, बलराज, रूसी सफरनामा, रायसीना प्रिंटर, दिल्ली, पहला संस्करण 1971, पृष्ठ संख्या- 63
6- साहनी, बलराज, रूसी सफरनामा, रायसीना प्रिंटर, दिल्ली, पहला संस्करण 1971, पृष्ठ संख्या- 65-66
7- सांस्कृत्यायन, राहुल, रूस में पच्चीस मास, राधाकृष्ण पेपरबैक्स, जगतपूरी दिल्ली, पहला संस्करण, 2025,पृष्ठ संख्या- 67
8- सांस्कृत्यायन, राहुल, रूस में पच्चीस मास, राधाकृष्ण पेपरबैक्स, जगतपूरी दिल्ली, पहला संस्करण, 2025,पृष्ठ संख्या-77
9- सांस्कृत्यायन, राहुल, रूस में पच्चीस मास, राधाकृष्ण पेपरबैक्स, जगतपूरी दिल्ली, पहला संस्करण, 2025,पृष्ठ संख्या-92
10- गगनांचल, सं. शंकर, रवि, मई-जून 2024, वर्ष :47,अंक-3, पृष्ठ संख्या -53

निराला की प्रगतिवादी कविताओं में यथार्थबोध

डॉ. आनंद कुमार गोंड*

प्रस्तावना

जनकवि के रूप में प्रसिद्ध **सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'** का काव्य हिन्दी साहित्य में एक नए युग की शुरूआत को दर्शाता है। उनकी कविताओं में **यथार्थबोध** का गहरा, सजीव और संवेदनशील चित्रण मिलता है, जो प्रगतिवादी दृष्टिकोण से प्रेरित है। निराला ने अपनी रचनाओं के माध्यम से समाज के वास्तविक जीवन, उसकी समस्याओं और संघर्षशील परिस्थितियों को सजीव रूप में प्रस्तुत किया है।

उनकी कविताओं में **यथार्थबोध** एक महत्वपूर्ण तत्व के रूप में उपस्थित है, जो पाठक को समाज की गहराई को समझने के लिए प्रेरित करता है। उनकी रचनाओं में यथार्थ का स्वरूप केवल दृश्य चित्रण तक सीमित नहीं है, बल्कि वह समाज के भीतर व्याप्त गहरी समस्याओं, विसंगतियों और असमानताओं को भी उजागर करता है। वे अपने काव्य के माध्यम से यह दिखाते हैं कि समाज में अनेक ऐसी स्थितियाँ हैं, जो सामान्य नहीं, बल्कि गम्भीर और विचारणीय हैं।

भिक्षुक में देश की गरीबी, भूख और सामाजिक पीड़ा का चित्रण मिलता है, जबकि **तोड़ती पत्थर** में मजदूर नारी के परिश्रम, अभाव और जीवन–संघर्ष का मर्मांतक चित्रण है। ये रचनाएँ निराला के यथार्थबोध की सशक्त अभिव्यक्ति हैं।

निराला की कविताओं में समाज के विभिन्न वर्गीकृत किसान, मजदूर, गरीबों, उपेक्षितों और पीड़ितों का जीवन सजीव रूप में उभरकर सामने आता है। यह चित्रण पाठक को यह महसास कराता है कि वह स्वयं उस समाज का हिस्सा है, जिसका वर्णन कविता में किया गया है। उनकी कविताओं का एक महत्वपूर्ण पहलू यह है कि वे केवल समस्याओं का वर्णन नहीं करते, बल्कि उन्हें समझने और उन्हें दूर करने के लिए प्रेरित भी करते हैं। यह दृष्टि उनके काव्य को सामान्य वर्णन से ऊपर उठाकर एक सामाजिक जागरण का रूप प्रदान करती है।

निराला की ''प्रगतिवादी दष्टिकोण'' उनके काव्य का मुख्य आधार है। इस दष्टिकोण में समाज के प्रति संवेदनशीलता, असमानता के प्रति आक्रोश और परिवर्तन की आकांक्षा स्पष्ट रूप से देखने को मिलती है। वे समाज को एक नए और न्यायपूर्ण दिशा में ले जाने की बात करते हैं।

कुकुरमुत्ता में पूँजीवादी मानसिकता और सामाजिक विसंगतियों पर तीव्र व्यंग्य मिलता है। यह रचना बताती है कि निराला केवल संवेदनशील कवि नहीं, बल्कि समाज के सचेत आलोचक भी थे। उनकी रचनाओं में यथार्थबोध एक **गतिशील प्रक्रिया** के रूप में उपस्थित है, जो समय और परिस्थिति के साथ बदलती रहती है। इसलिए उनकी कविताओं में यथार्थ का चित्रण भी और गहरा होता है।

निराला की कविताओं में **मानवीय संवेदना** का गहरा प्रभाव देखने को मिलता है। वे मानव जीवन की पीड़ा, संघर्ष, अभाव और आशाओं को इस तरह प्रस्तुत करते हैं कि वह पाठक के मन को गहराई से स्पष्ट कर देता है। इसी के साथ उनकी **भाषा और शैली** भी उनके यथार्थबोध को और अधिक प्रभावी बनाती है। सरल, सहज, सुबोध और प्रभावपूर्ण भाषा के माध्यम से वे अपने गहरी विचारों को बहुत सफलता से प्रस्तुत करते हैं।

अतः स्पष्ट है कि **निराला** की प्रगतिवादी कविताओं में **यथार्थबोध** एक महत्वपूर्ण और केन्द्रीय तत्व के रूप में उपस्थित है, जो उनके काव्य को सजीव, संवेदनशील और प्रभावी स्वरूप प्रदान करता है। यह यथार्थबोध पाठक को केवल समाज की वास्तविकता से परिचित नहीं कराता, बल्कि उसे विचार करने और परिवर्तन की दिशा में बढ़ने के लिए प्रेरित भी करता है।

यथार्थबोध की अवधारणा और निराला

यथार्थबोध का अर्थ है वास्तविकता की सही पहचान, उसके मूल स्वरूप का ज्ञान और उसका सजीव चित्रण। **निराला** के काव्य में यह यथार्थबोध केवल दश्य चित्रण तक सीमित नहीं है, बल्कि वह समाज की

* सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग, उदित नारायण पी.जी. कॉलेज पडरौना, कुशीनगर
Email Id- anand.hindi91@gmail.com

गहरी समस्याओं, विसंगतियों, असमानताओं और मानवीय पीड़ा को भी उजागर करता है। उनकी दष्टि में यथार्थ एक **गतिशील प्रक्रिया** है, जो समय और परिस्थिति के साथ बदलती रहती है। इसलिए उनकी कविताओं में यथार्थ का चित्रण बहुआयामी, गहरा और सजीव होता है।

निराला का यथार्थबोध सामान्य दृष्टि से भिन्न है। वे वास्तविकता को केवल देखने तक सीमित नहीं रखते, बल्कि उसे समझने और उसके मूल कारणों को पहचाने का प्रयास करते हैं। इस दष्टि से उनका काव्य गम्भीर विश्लेषण का रूप ले लेता है। उनकी कविताओं में यथार्थ का चित्रण इस प्रकार किया गया है कि वह पाठक को समाज की वास्तविकता से सीधे जोड़ देता है। यह चित्रण पाठक के मन में संवेदना और विचार दोनों को एक साथ जागृत करता है।

तोड़ती पत्थर इस यथार्थबोध का सबसे सशक्त उदाहरण है। इस कविता में एक गरीब मजदूर नारी कड़ी धूप में पत्थर तोड़ती हुए दिखाई देती है। यहां कवि ने केवल एक दृश्य नहीं दिखाया, बल्कि समाज की आर्थिक असमानता, श्रम के शोषण और नारी जीवन की कठोरता को उजागर किया है।

इसी के साथ निराला यथार्थ को एक **सामाजिक दृष्टि** से देखते हैं। वे समाज की समस्याओं को एक व्यक्तिगत घटना के रूप में नहीं, बल्कि एक व्यापक संरचना के परिणाम के रूप में प्रस्तुत करते हैं। उनकी कविताओं में यह भी स्पष्ट होता है कि यथार्थ का अर्थ केवल दुःख और पीड़ा का चित्रण नहीं है, बल्कि उसमें आशा और परिवर्तन की संभावनाएँ भी निहित हैं।

भिक्षुक में भूख से पीड़ित एक भिखारी का चित्रण है, जो समाज की असंवेदनशीलता पर तीखा प्रश्न खड़ा करता है। यह कविता निराला के मानवीय यथार्थबोध की अत्यंत मार्मिक अभिव्यक्ति है। अतः स्पष्ट है कि **निराला** के काव्य में यथार्थबोध एक सजीव, गतिशील और गहरा अवधारणा के रूप में सामने आता है, जो पाठक को समाज की वास्तविकता को समझने के लिए प्रेरित करता है।

आर्थिक असमानता और यथार्थबोध

निराला की कविताओं में **आर्थिक असमानता** का स्पष्ट और मर्मांतक चित्रण मिलता है। वे गरीबी, भूख, बेरोजगारी और अभाव को एक यथार्थ के रूप में प्रस्तुत करते हैं। उनकी रचनाओं में यह देखने को मिलता है कि समाज का एक वर्ग सुख–सुविधाओं से परिपूर्ण है, जबकि दूसरे वर्ग को मूलभूत आवश्यकताएँ भी उपलब्ध नहीं होती। यह विरोधाभास उनके यथार्थबोध को और अधिक प्रभावी बनाता है।

भिक्षुक में भूख से व्याकुल मनुष्य की दशा का चित्रण है। यहां भूख केवल व्यक्तिगत समस्या नहीं, बल्कि सामाजिक संरचना की असफलता का प्रतीक बन जाती है। इसी के साथ निराला आर्थिक समस्याओं को केवल संख्यात्मक आँकड़ों के रूप में नहीं देखते, बल्कि उन्हें **मानवीय दृष्टिकोण** से समझने का प्रयास करते हैं। उनकी कविताओं में गरीबी का चित्रण इस तरह किया गया है कि वह पाठक के मन को गहराई से स्पष्ट कर देता है।

भिक्षुक में देश की सामूहिक गरीबी, भूख और निर्धन जनता की पीड़ा को अत्यंत तीव्रता से व्यक्त किया गया है। यह कविता आर्थिक असमानता के राष्ट्रीय स्वरूप को सामने लाती है। उनकी कविताओं में यह भी देखने को मिलता है कि आर्थिक असमानता समाज में कई अन्य समस्याओं को जन्म देती है। यह समस्याएँ शोषण, असन्तुष्टि, अपराध, अनाचार और संघर्ष के रूप में सामने आती हैं।

निराला इस असमानता के मूल कारणों पर भी प्रकाश डालते हैं। वे दिखाते हैं कि गलत आर्थिक व्यवस्था, असन्तुलित सामाजिक संरचना और सुविधाओं के असमान वितरण से यह समस्या बढ़ती है। उनकी दृष्टि में आर्थिक समानता के बिना समाज में वास्तविक शांति और विकास संभव नहीं है। इसलिए उनकी कविताओं में **आर्थिक न्याय** की आवश्यकता पर भी बल दिया गया है।

अतः स्पष्ट है कि **निराला** की कविताओं में आर्थिक असमानता का यथार्थबोध एक गहरी, संवेदनशील और जागरूक दृष्टि के रूप में सामने आता है, जो पाठक को समाज की वास्तविकता को समझने और उसके विरूद्ध विचार करने के लिए प्रेरित करता है।

श्रम और मजदूर जीवन का यथार्थ

निराला ने **मजदूर वर्ग** और श्रम करने वाले लोगों की स्थिति का अत्यंत यथार्थपूर्ण, संवेदनशील और मर्मांतक चित्रण किया है। वे दिखाते हैं कि श्रम करने वाला वर्ग समाज का आधार है, फिर भी उसे उचित सम्मान, सुविधाएँ और उचित प्रतिफल प्राप्त नहीं होता। उनकी कविताओं में मजदूर जीवन की कठिनाइयों, संघर्ष, असुरक्षा और अभाव का सजीव चित्रण मिलता है।

तोड़ती पत्थर इस विषय की सबसे प्रसिद्ध रचना है। इस कविता में कड़ी धूप में पत्थर तोड़ती एक मजदूर नारी का चित्रण है। यहां कवि ने मजदूर के परिश्रम के साथ–साथ उसकी आर्थिक बेबसी और समाज की असंवेदनशीलता को उजागर किया है।

इसी के साथ **निराला** यह भी दिखाते हैं कि मजदूर केवल शारीरिक परिश्रम तक सीमित नहीं रहता, बल्कि वह मानसिक तनाव, असुरक्षा, अस्वस्थ्य और भविष्य की अनिश्चितता से भी ग्रसित रहता है। यह समस्याएँ उसके जीवन को और अधिक कठिन बनाती हैं। उनकी दृष्टि में मजदूर वर्ग समाज की एक महत्वपूर्ण शक्ति है, जो उत्पादन, निर्माण और सभ्यता का मुख्य आधार होता है। फिर भी उसे उचित सम्मान और उचित प्रतिफल नहीं मिलता, जो समाज की असन्तुलित व्यवस्था को दर्शाता है।

भिक्षुक में भूख और निर्धनता से पीड़ित सामान्य मनुष्य की स्थिति का चित्रण भी इसी मजदूर वर्ग की विस्तृत पीड़ा से जुड़ा हुआ है। यहां कवि दिखाते हैं कि परिश्रम करने वाले लोग कभी–कभी भोजन तक से वंचित रह जाते हैं।

निराला इस असन्तुलन को केवल दर्शाते ही नहीं, बल्कि उसे समझने और उसके विरूद्ध विचार करने के लिए प्रेरित भी करते हैं। उनकी कविताओं में **श्रम की गरिमा** और उसकी आवश्यकता पर भी बल दिया गया है।

अतः स्पष्ट है कि **निराला** की कविताओं में मजदूर जीवन का यथार्थ एक सजीव, संवेदनशील और जागरूक रूप में सामने आता है, जो पाठक को समाज की गहरी समस्याओं को समझने के लिए प्रेरित करता है।

स्त्री जीवन और यथार्थबोध

निराला की कविताओं में **स्त्री जीवन** का यथार्थ भी स्पष्ट रूप से उभरकर सामने आता है। वे स्त्री के शोषण, संघर्ष, उसकी आंतरिक शक्ति, सहनशीलता और जीवन संघर्ष का संवेदनशील चित्रण करते हैं। उनकी दृष्टि में स्त्री केवल सहानुभूति की पात्र नहीं, बल्कि एक सशक्त व्यक्तित्व के रूप में उपस्थित होती है।

तोड़ती पत्थर में मजदूर नारी का चित्रण केवल मजदूर जीवन ही नहीं, बल्कि नारी जीवन के यथार्थ का भी सशक्त उदाहरण है। वह कड़ी परिस्थितियों में भी श्रम करती है, पर समाज उसे उचित सम्मान नहीं देता।

उनकी कविताओं में यह भी स्पष्ट होता है कि स्त्री को समाज में कई प्रकार की बाधाओं का सामना करना पड़ता है। चाहे वह घर के अन्दर की सीमाएँ हों या बाहर की सामाजिक स्थितियाँ। यह बाधाएँ उसके विकास और उसके व्यक्तित्व के पूर्ण विकास में बाधा बन जाती है।

''सरोज स्मति'' में निराला का पिता हदय, नारी के प्रति प्रेम और करूणा की गहरी संवेदना दिखाई देती है। यह रचना नारी के प्रति उनकी मानवीय दृष्टि का उत्कृष्ट उदाहरण है।

निराला स्त्री के इस संघर्ष को केवल दर्शाते ही नहीं, बल्कि उसकी आंतरिक शक्ति, सहनशीलता और आत्मबल को भी उजागर करते हैं। वे यह दिखाते हैं कि स्त्री अपने जीवन की कठिनाइयों का सामना करते हुए भी अपनी पहचान और सम्मान के लिए संघर्ष करती है। इसी के साथ उनकी कविताओं में स्त्री के प्रति **सम्मान और समानता** की भावना भी स्पष्ट रूप से देखने को मिलती है। वे समाज को यह संदेश देते हैं कि स्त्री को समान अधिकार, सम्मान और अवसर मिलना चाहिए।

अतः स्पष्ट है कि **निराला** की कविताओं में स्त्री जीवन का यथार्थ एक संतुलित, गहरा और संवेदनशील रूप में सामने आता है, जहाँ पीड़ा, संघर्ष, आशा और आत्मबल का सम्पूर्ण चित्रण मिलता है। यह पाठक को स्त्री जीवन की वास्तविकता को समझने और उसके प्रति संवेदनशील बनाने के लिए प्रेरित करता है।

राजनैतिक और सामाजिक यथार्थ

निराला की कविताओं में **राजनैतिक और सामाजिक विसंगतियों** का अत्यंत यथार्थपूर्ण, गहरा और संवेदनशील चित्रण मिलता है। वे भ्रष्टाचार, असन्तुलन, शोषण, असमानता और समाज की अन्य समस्याओं को उजागर करते हैं। उनकी कविताओं में **यथार्थबोध** इस रूप में उभरता है कि वह समाज को अपनी कमीयों का अहसास कराता है और उसे सुधार की दिशा में प्रेरित करता है।

इसी के साथ **निराला** राजनैतिक व्यवस्था की कमियों और उसके दुरूपयोग को भी स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करते हैं। वे दिखाते हैं कि सत्ता का वास्तविक उद्देश्य जनता की सेवा होना चाहिए, किन्तु आधारभूत

रूप से यह उद्देश्य कई बार पूरा नहीं होता। जब सत्ता जनकल्याण के स्थान पर स्वार्थ और दमन का साधन बन जाती है, तब समाज में असन्तुष्टि बढ़ती है।

कुकुरमुत्ता इस दष्टि का महत्वपूर्ण उदाहरण है। इस रचना में निराला ने पूँजीवादी प्रवत्ति, सामाजिक असन्तुलन और शोषण पर तीव्र व्यंग्य किया है। यहाँ कवि केवल हसी उत्पन्न नहीं करते, बल्कि समाज की गहरी विसंगतियों पर प्रहार करते हैं।

उनकी कविताओं में राजनैतिक विसंगतियों का चित्रण इस तरह किया गया है कि वह पाठक को सोचने पर मजबूर कर देता है। वे समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार, अन्याय, अनाचार और असन्तुलन को सजीव रूप में प्रस्तुत करते हैं।

भुक्षिणी भारत में राष्ट्र की दयनीय आर्थिक स्थिति और सामाजिक अन्याय का चित्रण मिलता है**।** यह रचना बताती है कि राजनैतिक स्वतंत्रता के बाद भी जनता की मूल समस्याएँ पूरी तरह समाप्त नहीं हुईं।

निराला की दृष्टि में राजनैतिक और सामाजिक यथार्थ एक दूसरे से गहरी तरह जुड़े हुए हैं। वे यह दिखाते हैं कि राजनैतिक कमियों का प्रभाव समाज के हर वर्ग पर पड़ता है और यह समाज की वास्तविकता को प्रभावित करता है। इसी के साथ उनकी कविताओं में यह भी स्पष्ट होता है कि समाज में परिवर्तन के लिए **राजनैतिक जागरूकता** अत्यंत आवश्यक है। वे जनता को सचेत करने और उन्हें अपने अधिकारों के प्रति जागरूक करने का प्रयास करते हैं।

जागो फिर एक बार में निराला जनता को सुप्त अवस्था से उठकर जागने, चेतना ग्रहण करने और नए निर्माण की दिशा में बढ़ने का संदेश देते हैं। यह रचना उनकी राष्ट्रीय और सामाजिक चेतना का सशक्त उदाहरण है।

निराला का यथार्थबोध केवल आलोचना तक सीमित नहीं रहता, बल्कि वह एक प्रकार का **समाज सुधार आन्दोलन** बन जाता है। वे समाज को यह संदेश देते हैं कि उसे अपनी कमियों को समझकर उन्हें दूर करने के लिए प्रयास करना चाहिए।

अतः स्पष्ट है कि **निराला** की कविताओं में राजनैतिक और सामाजिक यथार्थ का चित्रण एक सजीव, गहरा, जागरूक और संवेदनशील रूप में सामने आता है, जो पाठक को समाज की वास्तविकता को समझने का प्रयास करती है।

भाषा शैली

निराला की **भाषा** सरल, सहज, प्रभावशाली और गहरी संवेदना से युक्त है। उनकी **शैली** में संवेदना, आक्रोश, व्यंग्य, करूणा और चेतना का संतुलित प्रयोग मिलता है। यही गुण उनके काव्य को और अधिक प्रभावी बनाते हैं। उनकी भाषा की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह सामान्य जनता के निकट है। वे कठिन और अति–संस्कृतनिष्ठ शैक्षिक भाषा का प्रयोग नहीं करते, बल्कि सहजा और सुबोध शब्दों के माध्यम से अपने विचारों को प्रस्तुत करते हैं। इस कारण उनकी कविताएँ आसानी से समझ में आती हैं।

भिक्षुक में सामान्य शब्दों के माध्यम से भूख और निर्धनता का जो चित्रण किया गया है, वह उनकी सरल किन्तु मर्मांतक भाषा का सशक्त उदाहरण है। निराला की शैली में एक विशेष प्रकार की **प्रभावशीलता** देखने को मिलती है। वे अपने विचारों को इस तरह प्रस्तुत करते हैं कि वह सीधे पाठक के मन पर असर छोड़ते हैं। यह प्रभावशीलता उनके काव्य को और अधिक गहरा और अर्थपूर्ण बनाती है। उनकी शैली का एक अन्य महत्वपूर्ण पहलू **आक्रोश** है, जो समाज की विसंगतियों और अन्याय के प्रति उनके विरोध को दर्शाता है।

कुकुरमुत्ता में तीव्र व्यंग्य और आक्रोश के माध्यम से पूँजीवादी प्रवृत्ति पर प्रहार किया गया है। यह उनकी विद्रोही शैली का उत्कृष्ट उदाहरण है। इसके साथ ही उनकी कविताओं में **संवेदना** का भी संतुलित प्रयोग मिलता है, जो उनके काव्य को मानवीय और संवेदनशील बनाता है।

''सरोज स्मति'' में पिता के हदय की पीड़ा, स्नेह और करूणा का गहरा प्रवाह दिखाई देता है। यह रचना उनकी भाषा की मार्मिक शक्ति को प्रदर्शित करती है। निराला की भाषा में एक प्रकार की **नवीनता और स्वतन्त्रता** भी देखने को मिलती है। वे परम्परागत भाषा शैली से अलग हटकर एक नए तरीके से अपने विचारों को प्रस्तुत करते हैं, जो उनके काव्य को विशेष बनाता है। इसी के साथ उनकी भाषा में **लोक जीवन की झलक** भी स्पष्ट रूप से देखने को मिलती है। वे लोक प्रचलित शब्दों, बोलचाल और सामान्य जीवन से जुड़े चित्रों का प्रयोग करके अपने काव्य को और अधिक यथार्थ और प्रभावी बनाते हैं।

अतः स्पष्ट है कि **निराला** की भाषा और शैली उनके काव्य का एक महत्वपूर्ण आधार है, जो उनके **यथार्थबोध** को और अधिक सजीव और प्रभावी बनाती है। यह पाठक को केवल कविता पढ़ने का अनुभव नहीं देती, बल्कि उसे गहराई से समझने और महसास करने का अवसर भी प्रदान करती है।

निष्कर्ष

इस प्रकार स्पष्ट है कि **सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'** की प्रगतिवादी कविताओं में **यथार्थबोध** एक महत्वपूर्ण तत्व के रूप में उपस्थित है। उनका काव्य समाज की वास्तविकता का सजीव, गहरा और संवेदनशील चित्रण प्रस्तुत करता है। उनकी कविताएँ पाठक को केवल सूचना नहीं देती, बल्कि उसे सोचने और समझने के लिए प्रेरित करती हैं। इस दृष्टि से उनका साहित्य समाज में परिवर्तन और जागरूकता का एक महत्वपूर्ण साधन है।

इसी के साथ यह भी स्पष्ट होता है कि निराला का यथार्थबोध केवल समाज की कमियों का आलोचना नहीं है, बल्कि वह एक सकारात्मक दष्टि भी प्रस्तुत करता है, जो परिवर्तन की संभावनाएँ तलाशता है। उनकी कविताओं में समाज के विभिन्न पहलुओं की आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक और सांस्कतिक सभी का सम्पूर्ण चित्रण मिलता है। यह विविधता उनके काव्य को एक व्यापक और गम्भीर स्वरूप प्रदान करती है।

तोड़ती पत्थर, भिक्षुक, कुकुरमुत्ता और **सरोज स्मृति** जैसी रचनाएँ इस बात का प्रमाण हैं कि निराला ने जीवन के कठोर यथार्थ को भी साहित्यिक गरिमा के साथ प्रस्तुत किया।

निराला की कविताओं का यथार्थबोध पाठक के मन पर गहरा प्रभाव छोड़ता है और उसे समाज की वास्तविकता से परिचित कराता है। वे पाठक को इस बात के लिए प्रेरित करते हैं कि वह केवल दर्शात हुए यथार्थ को स्वीकार नहीं, बल्कि उसे बदलने के लिए भी प्रयास करे। अतः निराला का काव्य केवल साहित्यिक दष्टि से ही नहीं, बल्कि सामाजिक दष्टि से भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। उनकी कविताएँ समाज में जागरूकता, संवेदनशीलता और परिवर्तन की भावना को प्रेरित करती हैं।

इस दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि **निराला** की प्रगतिवादी कविताएँ **यथार्थबोध** का एक सशक्त और सजीव उदाहरण हैं, जो हिन्दी साहित्य में उनके विशेष स्थान को स्पष्ट करती हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. निराला रचनावली, संपादक – रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. परिमल, – सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
3. अनामिका, – सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन।
4. कुकुरमुत्ता, – सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'।
5. निराला की साहित्य साधना, – रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन।
6. निरालाः व्यक्तित्व और कृतित्व, – रामविलास शर्मा।
7. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, – आचार्य रामच्द्र शुक्ल।
8. हिन्दी साहित्य का इतिहास, – हजारी प्रसाद द्विवेदी।
9. आधुनिक हिन्दी कविता, लेखक – नामवर सिंह।
10. प्रगतिवाद और हिन्दी कविता, – नामवर सिंह।
11. हिन्दी की प्रगतिवशील कविता, – शिवदान सिंह चौहान।
12. समसामकालीन हिन्दी कविता, – डॉ. नगेन्द्र।
13. निराला का काव्य और विचार, – विश्वनाथ त्रिपाठी।
14. हिन्दी कविता में यथार्थवाद, – रामस्वरूप चतुर्वेदी।
15. भारतीय साहित्य और समाज, – नामवर सिंह।
16. हिन्दी आलोचना का विकास, – नन्ददुलरे वाजपेयी।
17. आधुनिक हिन्दी काव्य, – डॉ. नगेन्द्र।
18. हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, – रामस्वरूप चतुर्वेदी।
19. प्रगतिवादी काव्यधारा, – डॉ. शिवकुमार मिश्रा।
20. निराला की काव्य चेतना, – डॉ. नगेन्द्र।